RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 12 प्रकाशन तिथि : 25 नवम्बर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 दिसम्बर 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

पूज्य श्री तनसिंह जी

अवतरण-25 जनवरी 1924 :: संस्थापक- श्री क्षत्रिय युवक संघ :: निर्वाण-7 दिसम्बर 1979

पूज्य श्री आयुवानसिंह जी

श्रद्धेय श्री नारायणसिंह जी

संघ प्रमुख 1969 से 1989

कौम के लिए है, आज काम की घड़ी

"आओ फिर से करें प्रतिष्ठा उस पावन प्रस्थान की"

हीरक जयंती समारोह

स्थान-श्री भवानी निकेतन प्रांगण, जयपुर

22 दिसंबर 2021, अपराह्न 12.15 बजे

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

फतेह सिंह जी
जसोल

कृष्णपाल सिंह

विशन सिंह
चांदेसरा

सुरेन्द्रपाल सिंह
मेवानगर

फतेहसिंह जी जसोल, कृष्णपालसिंह जी व विशनसिंह जी चांदेसरा के RI से पदोन्नत होकर नायब तहसीलदार बनने व सुरेन्द्रसिंह जी मेवानगर का आबकारी निरीक्षक पद पर चयन होने पर हार्दिक बधाई व उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

-: शुभेच्छु :-

विरम सिंह वरिया, नखतसिंह कालेवा, ठा.जसवंत सिंह कालेवा, जालमसिंह वरियाढाणा, गोविंद सिंह पायला कला, जितेंद्र सिंह तिलवाड़ा, रघुवीरसिंह राठौड़(J-E-N), संजयप्रताप सिंह चान्देसरा, मोहनसिंह जानकी, मूल सिंह चांदेसरा, जयपालसिंह अराबा, बाबूसिंह टाक डोली, राम सिंह सोमेसरा, खीमसिंह खेजड़ियाली, जेठूसिंह मेवानगर, ठा.विरेंद्र करण किटनोद, श्याम सिंह बायतु, डुंगरसिंह गोरडिया, उगमसिंह तिलवाड़ा, उगम सिंह मेवानगर, हड़मत सिंह हीर सिंहजी मेवानगर, नरपतसिंह महेचा, कलावा, दीप सिंह बिजेरी, दलपत सिंह जाजवा, भंवरसिंह अराबा, श्रवणसिंह करणोत, राजेन्द्र सिंह भाटी मोखण्डी

संघशक्ति

4 दिसम्बर, 2021

वर्ष : 57 अंक : 12

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	07
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	09
☞ प्रणाम मेरी प्रेरणा-1	✍ कृपाकांक्षी	13
☞ क्योंकि मैं साधक हूँ	✍ श्री साधक	14
☞ पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)	✍ श्री विरेन्द्रसिंह मांडण	15
☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	✍ स्वामी जगदात्मानन्द	17
☞ यदुवंशी करौली का इतिहास	✍ राव शिवराजपाल सिंह इनायती	19
☞ नारी सम्मान के आदर्श चरित्र	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	23
☞ विचार-सरिता (अष्ट षष्टि: लहरी)	✍ विचारक	27
☞ एक प्रेरक सत्य घटना	✍ श्री अजीतसिंह धोलेरा	29
☞ इतिहास के झरोखे में गोगा चौहान	✍ श्री मातुसिंह मानपुरा	30
☞ साथी कुछ	✍ श्री ईश्वरसिंह ढीमा	33
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

पू. आयुवानसिंह जी की 101वीं जयन्ती :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के द्वितीय संघप्रमुख पू. आयुवानसिंह जी की 101वीं जयन्ती 17 अक्टूबर को श्रद्धा पूर्वक मनाई गई। उन दिनों क्षत्रिय युवक संघ के प्रशिक्षण शिविर चल रहे थे। शिविरों में भी जयन्ती कार्यक्रम सम्पन्न हुए। बाड़मेर जिले में आकोड़ा, झुंझुनू जिले में गोठड़ा, डूंगरपुर जिले में रत्नेवाला, अजमेर जिले में गोयला और बालिका शिविर में वाघासण (गुजरात) में जयन्ती कार्यक्रम सम्पन्न हुए। आकोड़ा के माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर में मानवीय संरक्षक श्री भगवानसिंह जी तथा संघप्रमुखश्री लमक्ष्मणसिंह जी के सान्निध्य में आयोजन सम्पन्न हुआ।

संघशक्ति कार्यालय जयपुर, तनाश्रम कार्यालय जैसलमेर, आयुवान निकेतन कुचामन, तनायन कार्यालय जोधपुर तथा श्री दुर्गा महिला विकास संस्थान की बालिका छात्रावास नाथावतपुरा (सीकर) में जयन्ती कार्यक्रम सम्पन्न हुए। दक्षिण मुंबई की तणेराज शाखा, मलाड की दुर्गादास शाखा तथा भायंदर शाखा में जयन्ती मनाई। राजपूत सभा भवन पुणे में जयन्ती मनाई। सूरत की पृथ्वीराज शाखा में जयन्ती कार्यक्रम हुआ। राजनोता (जयपुर) तथा डीडवाना में श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन ने जयन्ती का कार्यक्रम किया। वन्दे मातरम् एकेडमी पाली, मेहोजी शाखा बेदू, पृथ्वीराज शाखा सिणेर, वीर दुर्गादास शाखा कुण्डल, उदयपुर, चिड़िया (बाड़मेर) में पू. आयुवानसिंह जी की जयन्ती मनाई गई। कल्लारायमलोत राजपूत छात्रावास सिवाना, वीर दुर्गादास राजूपत छात्रावास बालोतरा, सरदार राजपूत छात्रावास जोधपुर में जयन्ती कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जोधपुर शहर में शहीद खींवसिंह शाखा मैदान, ओमनगर कॉलोनी, हनुवंत राजपूत छात्रावास तथा भवानीनगर में जयन्ती कार्यक्रम हुए। जालोर जिले के काम्बा, पांचोटा तथा करड़ा गाँवों में जयन्ती मनी। सिरोही जिले के खन्दरा गाँव तथा सिरोही शहर में जयन्ती मनाई। जैसलमेर जिले के देवीकोट, मोढा, भोजराज जी की ढाणी, रामगढ, सोनू तथा पूनमनगर में जयन्ती कार्यक्रम हुए। गुजरात में साणंद, मगोड़ी तथा भावनगर के भक्तिनगर में जयन्ती मनाई गई। स्मरण रहे, गत वर्ष महामारी के कारण मैदानी कार्यक्रम नहीं हो सके थे लेकिन वर्चुअल माध्यम से पूज्यश्री की जयन्ती पर साप्ताहिक उद्‌बोधन माला द्वारा 100वीं जयन्ती पर श्रद्धांजलि अर्पित की गई थी।

महापुरुषों की स्मृति में :

समाज के महापुरुषों और इतिहास पुरुषों की स्मृति में समय-समय पर कार्यक्रम होते आए हैं। यह परम्परा जानकारी भी बढाती है तथा प्रेरणा भी देती है। इसी श्रृंखला में 15 अक्टूबर को जैसलमेर जिले के रासला स्थित देगराय मंदिर परिसर में महारावल दुर्जनसाल (दूदा) और वीरवर तिलोकसी का बलिदान दिवस मनाया गया। फिरोजशाह तुगलक के जैसलमेर पर आक्रमण के समय हुए संघर्ष में महारावल दूदा व त्रिलोकसी ने मुँहतोड़ जवाब दिया। लगातार युद्ध के बाद जब अन्तिम युद्ध का निर्णय लिया तो वीरों ने केसरिया किया और शीश कटने के बाद भी शत्रुओं को रणक्षेत्र में ढेर करते रहे। जैसलमेर दुर्ग में जौहर की आग धधकी। जैसलमेर का यह दूसरा शाका था। इस अवसर पर श्री क्षत्रिय युवक संघ के संरक्षक माननीय भगवानसिंह जी ने उनको राष्ट्र के गौरव बताते हुए उनके जीवन से प्रेरणा लेने की आवश्यकता बताई और आत्म चिन्तन कर चरित्रवान बनने की राह पर चलने को कहा। बड़ी संख्या में लोग दूर-दूर के गाँवों से भी कार्यक्रम में सम्मिलित हुए।

पानरवा के सोलंकी राणा पूंजा की जयन्ती पाली जिले में देसूरी के निकट मेवी कलां गाँव में समारोह पूर्वक मनाई गई। जातीय तुष्टीकरण की राजनीति में राणा पूंजा को भील बताकर इतिहास को बिगाड़ने का प्रयास किया जा रहा है। राजनीति में सक्रिय लोगों को तो अपने स्वार्थ की ही लगी रहती है, अत: उन्हें पता ही नहीं है कि इतिहास को विकृत करना जातीय विद्वेष को हवा देना है, जो पाप

है। ऐतिहासिक स्थिति स्पष्ट करने हेतु ऐसे महापुरुषों की स्मृति में कार्यक्रम होते रहें तो प्रसारित की जाने वाली झूठ का असर नगण्य हो जाता है। पानरवा के शासक हरपाल को महाराणा उदयसिंह जी ने राणा की उपाधि दी थी। राणा पूंजा उन्हीं हरपाल के पौत्र थे। श्री क्षत्रिय युवक संघ के संघप्रमुख श्री लक्ष्मणसिंह जी ने इतिहास को प्रेरणा का स्रोत बताते हुए उसके तथ्यात्मक गहन अध्ययन की आवश्यकता बताई। इस अवसर पर राणा पूंजा के वंशज पानरवा के भंवर परीक्षित सिंह ने राणा पूंजा का इतिहास बताया तथा मेवाड़ के साथ पानरवा के सम्बन्धों की विगत बताई। श्री क्षत्रिय युवक संघ के वरिष्ठ स्वयंसेवक श्री नारायणसिंह जी माणकलाव ने श्री क्षत्रिय युवक संघ के महत्त्व को प्रकट किया।

प्रतिहार मिहिर भोज के नाम को भी राजनीति की जातीय तुष्टीकरण प्रक्रिया का शिकार बनाया गया है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के हीरक जयन्ती वर्ष में होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों में महापुरुषों की जयंतियाँ भी सम्मिलित हैं। प्रतिहारों का उद्‌गम मण्डोर क्षेत्र से माना जाता है अत: बेलवा (जोधपुर) में 18 अक्टूबर को प्रतापी सम्राट मिहिरभोज की जयन्ती मनाई गई। प्रतिहारों की प्राचीन राजधानी भीनमाल में भी 19 अक्टूबर को कार्यक्रम आयोजित किया गया। नोखा छात्रावास में क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन ने जयन्ती का आयोजन किया।

शिविर :

महामारी का असर नगण्य बन जाने के बाद श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों की शृंखला चल पड़ी। अक्टूबर और नवम्बर में बालिकाओं के शिविरों सहित बीस से अधिक प्राथमिक व माध्यमिक शिविर सम्पन्न हो चुके हैं। राजस्थान, गुजरात व उत्तरप्रदेश में शिविर सम्पन्न हुए। कोरोना अवधि में वर्चुअल माध्यम से कार्यक्रम होते रहे परन्तु नये बालकों के लिए शाखाओं व शिविरों का अवसर उपलब्ध नहीं हो सका। अब मैदानी शाखाएँ भी प्रारम्भ हुई हैं तथा शिविर करने का भी अवसर मिल रहा है।

तीर्थ दर्शन :

श्री क्षत्रिय युवक संघ की हीरक जयन्ती के वर्ष में जहाँ संघ के शिविर सम्पन्न हो चुके हैं वहाँ की यात्रा का भी एक कार्यक्रम दिया गया। जहाँ शिविर हुए वहाँ उस अवधि में प्रेरणा तथा अभ्यास दोनों ही शिविरार्थियों को मिले। ऐसे स्थान तो हमारे लिए तीर्थ ही हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेक स्थानों पर विभिन्न क्षेत्रों में यात्रा की गई और वहाँ के लोगों से सम्पर्क किया गया। ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण तीर्थ पिलानी में दीपावली के दिन कार्यक्रम आयोजित किया गया। संघ के संस्थापक पू. तनसिंहजी पिलानी में विद्या अध्ययन कर रहे थे, उस समय सन् 1944 की दीपावली के दिन उनके सामाजिक भाव ने नई दिशा पकड़ी। दीपावली की रोशनी प्रकाश फैला रही है, पर मेरे समाज में इन दीपकों से प्रकाश कैसे आ सकता है? समाज में प्रकाश फैले ऐसा कुछ किया जाना चाहिए। ये भाव ही आधार बने श्री क्षत्रिय युवक संघ के। ऐसी प्रेरणादायी भाव ज्योति जहाँ पनपी वह स्थान तो हमारे लिए तीर्थ ही है। पिलानी की राजपूत बोर्डिंग में कार्यक्रम हुआ और बोर्डिंग के कमरा नं. 12 में पूजा की गई। पिलानी में निवासरत के अलावा आसपास के गाँवों से भी समाज बन्धु कार्यक्रम में पहुँचे।

विविध कार्यक्रम :

विजयादशमी का कार्यक्रम शस्त्र व शास्त्र पूजन के साथ राजस्थान व गुजरात में अनेक स्थानों पर मनाया गया। क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन की कई जगह बैठकें हुई। कई जगह स्नेह मिलन कार्यक्रम हुए तो गुजरात में सम्पर्क यात्राएँ भी हीरक जयन्ती वर्ष में होती रही। प्रताप फाउण्डेशन के कार्यक्रम सीकर, जयपुर, कुचामन, डूंगरपुर में जिला स्तरीय हुए। ❑

कौम के लिए है आज काम की घड़ी

चलता रहे मेरा संघ

{माननीय भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा संघशक्ति प्रांगण में आयोजित विशेष शिविर में 1.10.2007 को उद्‌बोधित संदेश का संक्षेप}

अभी हमने जो गीत गाया, उसमें आया है कि हाथ पकड़ कर मुझे अपने साथ लिया और मुझे युगों की मंजिल का राही बनाया। हम कृत कृत्य हो गये कि हमें भगवत पथ पर चलने का अवसर मिला और हम चल पड़े। वह कृतज्ञता का भाव कितना गहरा था कि उसने कुछ भी छिपाकर नहीं रखा, तो मैंने भी कुछ नहीं छिपाया। तब हमारा योग हो गया। हमारा सपना तब एक हो गया। हमारा सहयोगी से योग हो गया। सहयोगी का उद्देश्य हमारा उद्देश्य बन गया तो सहयोगी का मार्ग हमारा मार्ग बन गया। उसके भाव हमारे भाव बन गये।

सजगता और सक्रियता का अभाव हुआ तो हमारे उस उदात्त भाव परआवरण आ गया। यह आवरण परमेश्वर की कृपा के बिना नहीं हट सकता। स्थिति तो यह है कि हमारे आसपास वाले लोग हमारे बारे में सोचते हैं कि हम पटरी से कैसे उतर गये, पर हम स्वयं अपने बारे में नहीं सोचते। कुत्ता जिस तरह से हड्डी में रस लेने के लिये उलझ जाता है, उसी तरह हम भी इस सांसारिक माया चक्र में ही रस लिए पड़े हैं। हड्डी में रस है नहीं, पर उसको चबाने से स्वयं के निकले रक्त से ही कुत्ते की लालसा बढती जाती है और वह उलझा रहता है। उसी प्रकार सजगता और सक्रियता के अभाव में सांसारिक मायाचक्र में ही हम जिन्दगी गुजार रहे हैं। पर इस स्थिति को हम समझ नहीं पाते तब ईश्वर को दया आती है और वह ऐसे अवसर जुटाता है जहाँ हम हमारे उस आवरण से बाहर आ सकें। लेकिन अवसर का लाभ उठाने की लगन नहीं और इंतजार करते हैं निमंत्रण का। हमें स्वयं हमारा जीवन सार्थक पथ पर चलाना है, दूसरा कौन निमंत्रण देने आएगा। अवसर बनता है, लाभ तो हमें स्वयं ही उठाना है।

पू. तनसिंहजी ने करुणा पूर्वक पुस्तक लिखी 'साधक की समस्याएँ'। वह पुस्तक हमारे लिए है लेकिन हमें समझ में नहीं आती। एक साधक को जो समस्याएँ आ सकती हैं उसकी साधना में बाधक बनने के लिए, वे क्या हैं उनका सटीक वर्णन है। पर हम उसमें हमारी समस्या पहचान नहीं पाते। क्योंकि हम शिविरों में न आकर इस सत्संग से दूर रहते हैं। इसीलिए विशेष शिविरों का आयोजन किया जा रहा है कि हम इनमें अवश्य आएँ और इस सत्संग से अपने उस उदात्त भाव पर आए आवरण को हटाएँ। सत्संग का अर्थ है-सत्य का संग। सत्य है आत्मा, सत्य है परमात्मा। सत्य की झलक हमको वही दिखा सकता है, जिसने ज्यादा उपलब्ध किया है। इसलिए उसके पास बैठें।

बेटा, पत्नी, नौकरी इत्यादि उबार नहीं सकते। ये डुबा ही सकते हैं। ईश्वर ने इनका साथ दिया है, इनका सदुपयोग करने के लिए, इनमें रस लेकर डूबने के लिए नहीं। मुझे क्या करना चाहिए उस भगवत पथ पर चलने के लिए और क्या नहीं करना चाहिए, यह इस रस में डूबने से नहीं जाना जा सकता। जो सही मार्ग का निर्णय दे सके वही पथ प्रदर्शक है और उसी के संग से वह आवरण कटता है। परमेश्वर के मार्ग की एक झलक यथार्थ गीता में है जो बार-बार पढने से समझ में आती है। वह हमारे इस संघ के मार्ग में सहायक है। हम एक चालुकानुवर्ती भाव को भूल गए हैं। सूत्र को भली प्रकार न समझने पर वह रूढी बन जाती है। पथ-प्रदर्शक कहे वह करते जाएँ तो उसी से आवरण हटेगा, मार्ग मिलेगा। मार्ग पर चलने से ही उद्धार होगा। सांसारिक ज्ञान की विद्वता से यह आवरण नहीं हटता। पथ प्रदर्शक की कही बात को रटने से मार्ग नहीं मिलता। जो कहा गया उसे करने से मार्ग मिलेगा। यह सत्य है कि किए बिना कुछ होता नहीं और दिए बिना कुछ मिलता नहीं। जिसकी समझ ठीक है, उसके इर्द-गिर्द हों तो हमारी समझ भी ठीक होगी। अत: असमंजस से निकलने के लिए सत्संग में रहें। ❑

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

स्वतंत्रता जीवन की स्वाभाविक वृति है। स्वतंत्रता की चाह अँग्रेजी साम्राज्यवाद के दिनों में आजादी की लड़ाई के दौरान उपजी है ऐसा नहीं है, स्वतंत्रता की चाह तो क्षत्रियों के स्वभाव में ही समायी हुई है यानी स्वतंत्रता क्षत्रियों की स्वाभाविक वृति में है। क्षत्रिय हमेशा स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान के प्रतीक रहे हैं। क्षत्रिय किसी जाति, समाज या क्षेत्र के हिमायती नहीं बल्कि सभी स्वाभिमान एवं स्वतंत्रता प्रेमियों के आदर्श हैं। क्षत्रियों ने देश की मुक्ति के लिए न केवल अपने वैयक्तिक सुख-सुविधा एवं राजसी ऐश्वर्य को ही तिलांजलि दी अपितु अपनी वंश-परम्परागत जागीर सहित अपना सर्वस्व दाव पर लगा दिया। देश भक्ति और राष्ट्र हित के लिए सब कुछ समर्पण कर देने की भावना जितनी क्षत्रियों में है, उतनी अन्य वर्ग में नहीं देखी जा सकती। स्वतंत्रता आन्दोलन यानी हमारे स्वाधीनता संग्राम में क्षत्रियों की अहम भूमिका रही है, पर आजादी में सत्ताधारी सरकार की आँखों की किरकिरी बना क्षत्रिय समाज के स्वतंत्रता सेनानियों का इतिहास द्वेष व ईर्ष्या की भेंट चढ गया। इन तत्कालीन सत्ताधारियों ने असंख्य स्वतंत्रता सेनानियों के चरित्र को उजागर ही नहीं होने दिया, इतिहास में इनको जगह ही नहीं दी, इनके शौर्य और साहस को दफना दिया गया।

शौर्य और साहस के प्रतिरूप, निर्भीकता के प्रतीक, तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी, त्याग की प्रतिमूर्ति, राष्ट्र भक्त, देश प्रेम के दिवाने, क्रान्ति के अग्रदूत पूज्य श्री तनसिंहजी में स्वतंत्रता की आग प्रज्वलित होकर हिलोरें ले रही थी। जिन दिनों पूज्य श्री तनसिंहजी पिलानी में पढ रहे थे, उस समय आजादी की लड़ाई की एक घटना है जो स्वतंत्रता के सम्बन्ध में पूज्य श्री के हृदय में जलती आग को पुष्ट करती है। इस घटना के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने सेठ बिड़ला जी को सम्बोधित करते हुए जो कहा, उन्हीं की जुबानी –

''मैंने तुम्हारा सदावृत देखा। सदावृत का अध्यक्ष तुमने एक पहाड़ी ब्राह्मण को खड़ा किया। तुम्हारी बुद्धि की दाद देता हूँ, इससे बढकर तुम्हें कोई भाट मिल नहीं सकता था। पर मेरी तो उनके प्रति भी श्रद्धा है, आखिर वह मेरा गुरु है। उसके व्यक्तित्व में मुझे कुछ अजीब सा आकर्षण दिखाई देता है। सेठ साहब! आपका यह ब्राह्मण अधिकारी खादी पहिना करता था, किन्तु 1942 में जब आजादी की लहर देशवासियों में फैली और भारत के सीमान्त पर सुभाष के नेतृत्व में जब फौजें एकत्रित हो गई, तब हम लोगों के मन में भी देश प्रेम की लहर आ गई। स्कूल छोड़कर हड़तालें भी हुई। परिणाम हुआ, तुम्हारे उस ब्राह्मण अधिकारी ने कई छात्रों को स्कूल से निकाल दिया। मेरे मन में उस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की जची। मैंने अनशन करने का विचार किया और तुम्हारे सदावृत के द्वार बैठ गया। मैंने अन्न ही नहीं, जल का भी परित्याग कर दिया था। बहुत से लोग मनाने आये, पर नहीं माना। मेरी हठधर्मी सी थी पर कुछ अन्याय भी था, इसमें भी मुझे सन्देह नहीं लगता था। जवानी का जोश था। तीन दिन बाद तुमने मध्यस्था की और हमारी माँगें मंजूर की गई। उस दिन सेठ साहब! तुमने खुद ने कहा था, 'यह तुमने भूख हड़ताल का कैसा मार्ग अपनाया है? तुम्हारे बाप-दादों का यह मार्ग नहीं था।' मुझे अचरज हुआ सेठजी! कि तुम हमारे बाप-दादों को अभी तक नहीं भूले हो।''

स्वार्थी लोग अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए भोले-भाले लोगों को भ्रमा कर अपने जाल में फंसा लेते हैं और अपने काम निकालते रहते हैं। ऐसे ठगी लोगों का पर्दा फाश करते हुए, चेतावनी भरे शब्दों में सेठ जी को आप बीती सुनाते हुए पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा, उन्हीं की जुबानी –

''धन मिटने का नहीं और इसीलिए धनवान भी मिटने के नहीं। जब तक धनवान रहेंगे, तब तक गरीब भी

रहेंगे। इसीलिए तुम्हारे अनिवार्य अस्तित्व को देखकर, केवल तुम्हें गालियाँ नहीं देना चाहता, पर आत्मीयता से मैं तुम्हें अपनी आप बीती सुनाना चाहता हूँ, और कोई कारण नहीं है। सेठजी! मैं हमेशा आदमियों से मिलने से डरता हूँ। कलम और कागज तथा पुस्तकें ही मेरे साथी रहे हैं। जो बरबस मुझसे परिचय कर लेते हैं, उनको सहज ही मैं सहानुभूति दे देता हूँ, पर बातचीत के ऊपरी टीप-टाप को मैं समझ नहीं सका और वह कमी मुझे अब भी महसूस होती है। एक बार मैंने तुम्हें देखा था कि तुम नेताओं वगैरह से कैसे बात करते हो और कैसी चतुराई से उन्हें कोरा ही टरका देते हो।

''तुमने सेठजी! अपने स्वार्थ साधन के लिए मेरे गरीब भाइयों को भी बहका दिया है। उनको तुमने फुसला दिया है कि वे भी एक दिन सेठ बन जायेंगे। तुम्हारी छेल छबीली लक्ष्मी पर मेरे कई गरीब भाई मरे जा रहे हैं-फिदा हो गए हैं। मेरे वे भाई भूल ही गये कि कितनी रातें जगा-जगा कर हमने पास-पास बैठकर कितनी कठिनाइयों और परेशानियों पर परस्पर सहयोग से विजय पाई है, पर तेरी लक्ष्मी का आकर्षण ही ऐसा है कि सब तेरी ओर भागे आ रहे हैं।

''पर सेठ! तुम मुझे भी साधारण व्यक्ति मत मानना। यह जितने भी मेरे गरीब भाई बहकाए हुए तुम्हारे पास आए हैं, किसी न किसी दिन तुम्हारे इरादों को समझ जायेंगे। फिर उसी दिन तेरा यह मृगजाल छिन्न-भिन्न हो जाएगा। यदि ऐसा न भी हुआ, तो मेरे पास भी एक ब्रह्मास्त्र है। वे है आँसू, गरीबों का एकमात्र धन। मैंने किसी गरीब भाई के द्वार पर जाकर आँसू बहा दिया, तो वह दौड़ा हुआ मेरे पास आ जाएगा। उन्हें रोक कोई नहीं सकता, केवल आँसू ही रोक सकते हैं, जो तुमने बहाना सीखा ही नहीं। स्वार्थ की आग में तेरे आँसू कभी के भाप बन कर उड़ गये। इसलिए तुम कभी रोए नहीं। यदि तुम रो दो तो वास्तव में तुम हमको प्रभावित कर सकते हो, पर तुम ऐसा नहीं कर सकते। तुम यह पूछोगे कि तुम्हारे वे गरीब भाई आखिर तुम्हारे आँसुओं को देखकर क्यों दौड़े आयेंगे? तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है सेठजी! जब हम रोते हैं और हमारी आँखों में आँसू टपकते हैं, तब वे आँसू हमारे नेत्र-कटोरों से नहीं निकलते, बल्कि हमारा अन्तःकरण पिघल-पिघलकर बाहर आता है। हमारी पराजयों के कारण हमारा खून पानी बन-बनकर बहने लगता है और उस पानी में प्रभु की दया बरसती है, मानवता की व्यथा गलने लगती है-भाई का बन्धुत्व साकार होता है-ममता के नाले बहते हैं।

''सेठजी! मेरे आँसुओं की लम्बी कथा है। एक इतिहास है उसके पीछे। मैंने कभी नाटक और अभिनय में आँसू नहीं बहाये, यद्यपि लोगों को मैं यही कहता हूँ कि चाहूँ तब आँसू बहा सकता हूँ। पर मेरी आँख से जब आँसू निकलता है, तब भगवान स्वयं आर्तनाद कर उठते हैं। वेदना और व्यथा से समस्त लोक क्षुब्ध हो जाता है और इसीलिए जब कभी मेरे आँसू बहे हैं, मैं अपने कार्य में सफल मनोरथ हुआ हूँ। इन आँसुओं के पानी में मेरी समाज सेवा का लम्बा इतिहास है। तुम मोतियों के पारखी हो, पर मेरा एक-एक आँसू हजारों मोतियों से महंगा है, इसीलिए तो सैकड़ों गरीब भाइयों ने अपना सर्वस्व समर्पण कर रखा है, क्योंकि वे उसकी कीमत जानते हैं। मेरे आँसुओं के साथ उनकी भी आँखें जलजली हो उठती हैं, जैसे हमारे इस पानी का परस्पर अमिट सम्बन्ध है। इसीलिए सेठ! सावधान हो जा! मेरे आँसू अब बहने को हैं, क्योंकि उनके बहने का समय आ गया है। मैं आँसुओं के समुद्र भर दूंगा, पर मैं एक भी साथी से बिछुड़ना नहीं चाहता। वे मेरे भाई हैं। मेरी कुटी के बाहर उपेक्षित होकर पड़ा रहना अच्छा है उनके लिए, पर तेरे महलों में रहना अच्छा नहीं और इसीलिए देखो! वे आ रहे हैं, धीरे-धीरे मेरी ओर, बरबस खिंचे खिंचे से।''

(क्रमशः)

आओ फिर से करें प्रतिष्ठा उस पावन प्रस्थान की।

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण–105

मैं अपनी पीड़ा को मिटाना नहीं चाहता। क्षण–प्रतिक्षण उस पीड़ा का लक्ष–मुखी विस्तार कर जन–प्रतिजन को उससे व्याकुल देखना चाहता हूँ, उसे एक असाध्य रोग में परिवर्तित करना चाहता हूँ, ऐसे संक्रामक रोग का आविष्कार करना चाहता हूँ, जिसका कोई औषधि–उपचार ही सम्भव न हो। तब वह दिन कितना शुभ होगा जब एक की आत्म–वेदना से सब व्यथित और चीत्कार उठेंगे, एक का दुख सबका दुख बन जायेगा।

व्याकुल बनकर जग में जगाऊँ जगाऊँ एक पीड़ा।
दुखी होवे दिल से दूसरों की देख पीड़ा।।

मेरी साधना के अवतरणों तथा अपने समाज में जो प्रचलित व्यवहार है, इन दोनों के बीच बड़ा अन्तर देखने को मिलता है। मेरी साधना में त्याग, बलिदान, समर्पण, क्षात्रत्व और क्षात्रधर्म पालन करने में सहे जाने वाले कष्ट, दुख, मुसीबतों और संकट को हँसते–हँसते सहकर कौम का, जाति का, क्षत्रियों का गौरव बढाकर जाति को पद्म–विभूषित बनाने का आदर्श और आकाश जितना ऊँचा विचार प्रस्तुत किया गया है। जबकि समाज की आज की जीवन–शैली, व्यवहार आधुनिक समय के अनुरूप भोगवादी, खाओ–पियो और मौज करो, कर्ज करके भी भोग भोगने की चार्वाक शैली बनी हुई है। दोनों के बीच बड़ा अन्तर है। दोनों पूर्व–पश्चिम के छोर हैं। दोनों के बीच समन्वय कैसे साधा जाए?

यह भोगवादी विचारधारा आज नई निकल आई हो, ऐसा नहीं है। सदैव ही विचारधाराओं का द्वन्द्व है ही। हमारा इतिहास, हमारे धर्मग्रन्थ दो विचारधाराओं के संघर्ष से भरे पड़े हैं। क्षत्रिय भोगवाद से लड़कर, भोग को मर्यादित रखकर समाज में संतुलन बनाए रखने में सक्षम रहे थे, ऐसा कहना गलत नहीं है। परन्तु आज के युग में भोगवाद उच्छृंखल, अमर्यादित बनकर मानव जाति को आसुरी विचारधारा की ओर धकेल रहा है। क्षत्रिय अशक्त, निर्बल, संघर्षहीन बनकर भोगवादी विचारधारा में जाने–अनजाने फिसलता जा रहा है। इसीलिए आज उन्हें क्षत्रिय–आदर्श की बातें–त्याग, बलिदान, समर्पण की बातें बेकार और अनावश्यक लगती हैं और उनकी ओर उदासीन बन बैठा है।

मेरी साधना के 111 अवतरण हैं। यह 105वाँ अवतरण है। छः अवतरण ही शेष रहे हैं, इसीलिए इस अवतरण में मेरी साधना और समाज की वर्तमान वास्तविकता समझने का यह छोटा–सा प्रयास है। हम भोगवाद का शिकार बनकर उसके आदी बन बैठे हैं। इसीलिए हमारी निर्बलता, अशक्ति, लाचारी, विवशता को समय, संयोग, परिस्थिति के नाम से छिपाकर अपना बचाव कर रहे हैं। मेरी साधना और हमारा आज का व्यवहार, इन दोनों में सच्चा कौन, इसका उत्तर तो समय देगा।

अवतरण के प्रथम वाक्य–'मैं अपनी पीड़ा को मिटाना नहीं चाहता' के साथ अपनी इस व्यथा को मिटा देने की जगह उसे लाखों गुना बढाने की बात करते हैं। यह विचित्र लगता है न। स्वाभाविक रूप से मनुष्य वेदना, पीड़ा, दर्द, रोग को मिटाने का प्रयास करता है, उपचार करता है। परन्तु यह जो विपरीत बात कही गई है तो पहले हमें इस पीड़ा का अर्थ समझ लेना चाहिए। यह पीड़ा कोई शारीरिक पीड़ा नहीं है। यह तो अन्तर की व्यथा है। मानव जाति को, क्षत्रिय समाज को चूहे की तरह दिन–रात काटने वाले दूषण, रूढियाँ, व्यसन, कुसंप, ईर्षा, द्वेष, अहंकार, कर्तव्य–विमुखता जैसे भयंकर दुश्मनों से समाज को मुक्त करके, समाज को सरल, सदाचारी, संयमी, सेवाभावी, सहिष्णु, सहृदयी, उदार, वीर, प्रजाप्रेमी,

परोपकारी, कर्तव्य पथगामी बनाने की पीड़ा को लाख गुना बढाने की बात कह रहे हैं। अब तो यह बात विपरीत नहीं लगती न।

इस पीड़ा को, व्यथा को असाध्य अर्थात् जिसका कोई उपचार न हो, ऐसा बनाकर जन-प्रतिजन को इसी पीड़ा से व्याकुल देखना चाहते हैं। समाज का निर्मल स्वरूप अधोगति की ओर बढ रहा है, इस ओर समाज का ध्यान खींचकर इन विभिन्न प्रकार के विनाशक शत्रुओं को नष्ट करने की पीड़ा के साथ मैदान में उतार सकें। मेरी साधना की प्रवृत्ति श्री क्षत्रिय युवक संघ को इन दूषणों, कमियों के विरुद्ध युद्ध ही कहना चाहिए। इस युद्ध में लड़ने के लिये कैसा योद्धा चाहिए, उसकी योग्यता क्या हो वह सब पहले के अवतरणों में आ ही गया है। अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर बढकर बुराइयों को त्यागें और उत्तमता की ओर चलें।

अवतरण-106

मैं अपनी साधना की इतिश्री कर दूँ तो क्या होगा जानते हो, कदाचित्त नहीं। वेद और वेदों के प्रणेता प्रतारणा प्रचारक समझे जायेंगे-वर्णाश्रम धर्म की पावन सुरसरी विलुप्त हो जायेगी, निकृष्टतम लक्षणों से युक्त शूद्रत्व-सरिता कुल-मर्यादा का उल्लंघन कर प्रचण्डवती हो प्रवाहित होने लग जायेगी। जल प्लावन में चिर रक्षित धर्म और संस्कृति जलमग्न हो पङ्कशायी बन जायेगी, ऋषियों का अथक परिश्रम व्यर्थ जायेगा, रामराज्य स्वप्नवत् कल्पना समझी जायेगी।

क्षत्रिय छोड़े साधना अनर्थ का नहीं पार।
वेद, धर्म, संस्कृति का पतन पारावार।।

मेरी साधना क्षात्रधर्म की आवश्यकता और महत्त्व समझाने वाली पुस्तिका है। क्षत्रिय होने का दावा करने वालों को इस पुस्तिका को पढकर, समझकर, आचरण में ढालना चाहिए। आचरण बिना ज्ञान बोझ बनता है। इस अवतरण की शुरुआत इस प्रश्न से की गई है-'मैं अपनी साधना की इतिश्री कर दूं तो क्या होगा?' इसको समझना पड़ेगा। मैं कौन और मेरी साधना क्या है? मैं का अर्थ क्षत्रिय कहो या क्षत्रिय समाज कहो; मेरी साधना से अर्थ है क्षत्रिय की साधना। ईश्वरीय व्यवस्था में सहायक बनना, यही क्षत्रिय का कर्तव्य, उत्तरदायित्व है। क्षत्रिय इस दायित्व को, कर्तव्य को छोड़ दे तो समाज में कैसी स्थिति पैदा होती है, यह बात विस्तृत रूप से समझाते हुए इस अवतरण को समझना सरल हो, ऐसा लग रहा है। किन्तु उसका परिणाम कितना भयानक है, वह तो उसके बारे में गंभीरतापूर्वक चिन्तन-मनन करें तब ही सच्चा चित्र समझ में उतरेगा।

थोड़े में कहना हो तो कह सकते हैं कि क्षत्रिय अपनी साधना छोड़ दे, पूर्णाहुति कर दे तो जगत का सत्यानाश हो जाए। यह बात हमारे समक्ष प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती हो ऐसा नहीं लगता?

वेद और वेद के रचयिताओं को दुराचार के प्रचारक माना जायेगा। जगत के विद्वानों ने ही नहीं, भारत के विद्वानों, बुद्धिजीवियों और कुछ एक त्यागी तपस्वियों द्वारा भी वेद की अवहेलना गडरियों के गीत कहकर की गई।

'वर्णाश्रम धर्म की पवित्र सुरसरी विलुप्त हो जायेगी'। आज वर्गहीन, वर्णहीन समाज व्यवस्था के नारे में कहीं क्षत्रिय भी सुर मिलाता होगा। हम वर्ण व्यवस्था को ध्वस्त होते देख रहे हैं। वर्णव्यवस्था के स्थान पर ज्यादा संकुचित ज्ञाति-जाति समूह विभागों में समाज छिन्न-भिन्न होता जा रहा है। इसका आगे परिणाम क्या आएगा वह साधक आगे के वाक्य में समझाते हैं। क्षुद्रत्व सरिता के जल-प्रलय में चिर-रक्षित धर्म और संस्कृति जल समाधि ले लेगी। तब रामराज्य जैसी व्यवस्था केवल कल्पना ही मानी जायेगी। कितने ही बुद्धिजीवियों ने राम-कृष्ण जैसे कोई हो गये हों इस बारे में शंका व्यक्त कर कपोल-कल्पना बताई है।

इस बारे में गुजरात के एक कवि न्हानालाल का एक कथन समझने जैसा है। 'ऐसा युग आएगा अवनि पर, महापुरुषों के महाजीवन केवल कविता-मानवी मानेगा। अधूरे आत्मा के वामनजीओ नापेंगे अपनी ऊँचाई पर महावीरों का विराट शरीर। हमारी दृष्टि है, उतना ही आकाश ऊँचा नहीं है।'

क्षत्रिय होने का गौरव करते क्षत्रिय बन्धु जागो! सोचो! आज हम जी रहे हैं ऐसे जीवन से वेद का, वेद के रचियता का, धर्म-संस्कृति और ऋषियों के अथक परिश्रम का रक्षण, जतन हो सकेगा? सभी जगह से एक ही उत्तर होगा-असम्भव।

तब क्या करेंगे? रक्षणकार, पालनहार, बापु जैसी उपाधियाँ क्या व्यर्थ जायेगी? क्षत्रियत्व का दर्जा लोग हमसे खींच लें, उससे पहले हम जगें। हमारे कर्तव्य का, उत्तरदायित्व का पालन करें। आज क्षात्रधर्म के पालन करने के लिए सिर नहीं कटाना है। आज जगत में आतंकवाद, भ्रष्टाचार, अनाचार, अत्याचार, स्वार्थवाद, भोगवाद, व्यक्तिवाद जैसे अनिष्टों के सामने अनिष्ट अवरोधक आन्दोलन चलाने की अगवानी लेकर लोगों के समक्ष साबित कर देना है कि क्षत्रिय अनिष्टों के अवरोधक हैं। अनिष्टों से लड़ने वाला है। हमारे पूर्वजों ने ऐसा ही किया। पू. तनसिंहजी ने गीत की पंक्ति में कहा है-

दुखी जन के खातिर कृपाणें उठाई
तमोगुण से मेरी ठनी थी लड़ाई
झुका आसमां था, धरा भी झुकाई
भटकती जहाँ को राहें दिखाई
कभी चले मृत्यु को परिचय बताने
याद आ रहे हैं बीते जमाने

ऐसा यदि हमसे न हो सके तो अनिष्ट विरोधी आन्दोलन तो छेड़ ही सकते हैं। यह भी क्षात्रधर्म के मार्ग पर चलना ही माना जायेगा।

अवतरण-107

मैंने एक स्वप्न देखा है। गीता के ज्ञान, महात्मा कर्ण के स्वर्णदान, चन्द्रगुप्त के विजय-निशान, पृथ्वीराज के सर-सन्धान, हमीर की अमर आन, पद्मिनी की जौहर-बान, गुरु-बालकों के बलिदान, हाडी के शीशदान, दुर्गादास के स्वाभिमान, शिवाजी के स्वराज्य-विधान और लक्ष्मीबाई के समर-प्रयाण को कोई श्वेतवसना, विकृत-वदना, म्लानमना, चंचल रसना व्यक्ति हाथ में दुराग्रह की कुदाली लिए गहरे गर्त में गाडने का प्रयास कर रहा है-कह रहा है-''मैं यह परम्परा ही समाप्त करके रहूँगा''। मेरी संचित साधना बोल उठी-''ऐसा इन सब कार्यों की पुनरावृति के बाद ही होगा।'' नींद खुल गई।

उज्ज्वल इतिहास के रक्षण काज,
आलस्य प्रमाद त्यजकर क्षत्रिय जागे आज।

इस अवतरण में क्षात्रधर्म पालन की परम्परा के इतिहास को दफन करने की बात कही गई है। हमारे समाज के यानी क्षत्रिय समाज के श्रेष्ठ कार्यों को, पराक्रमों को एवं जो कुछ महामूला अमूल्य धन है उसे आधुनिक विचारधारा में रचे-बसे तथा कथित विद्वान और शासक जमीन में गाड देने का अथक प्रयास कर रहे हैं। फिर भी क्षत्रिय समाज तो आराम से नींद ले रहा है और मौज से जी रहा है।

किन्तु मेरी साधना का साधक उन अहंकारियों को जो कहते हैं-''मैं यह परम्परा ही समाप्त करके रहूँगा'' उत्तर देते हुए कहता है-''ऐसा इन सब कार्यों की पुनरावृत्ति के बाद ही होगा।'' अर्थात् यह परम्परा समाप्त नहीं हो सकती और साधनागत प्रक्रिया से ऐसे कार्यों की पुनरावृत्ति होगी। क्षात्रधर्म पालन की परम्परा अक्षुण्ण बनेगी। साधक ने कहा है क्या हमने कभी ऐसा सोचा है? कुछ लोग तो कहते हैं ऐसा सोचने का युग अस्त हो गया। आज तो कैसे विकास किया जाए यही सोचना है। बीती अतीत की बातों पर आँसू बहाते रहे तो आज की विकास की दौड़ में पिछड़ जाएँगे। मेरी साधना समाज को ऐसी स्थिति से बाहर लाने का और ईश्वर प्रदत कर्तव्य पालन का पाठ पढाती है।

अर्क- शाश्वत सत्य को छोड़कर युग सत्य के पीछे दौड़ना कायरता है।

अवतरण-108

क्षितिज के उस पार वह मदिरालय है जहाँ सुनते हैं जीवन की मस्ती बँटती है। तो चलूँ, छक कर पी जाऊँ आज उसे! मैंने अपनी गति द्विगुणित-त्रिगुणित और चतुर्गुणित की पर वह क्षितिज तो दूर

ही जा रहा है। अच्छा! विमुख हो दौड़ने लग जाऊँ विपरीत दिशा में। देखो! वह मदिरालय सहित क्षितिज ही मेरे पीछे दौड़ रहा है। नहीं ठहरूँगा, वे प्राप्ति इच्छुक और मैं प्राप्य हूँ अब, दौड़ने दूँ उन्हें ही अपने पीछे!

क्षितिज का छौर नहीं, दोड़ो नहीं पाने को,
भ्रामक मोह तजो सच्चा सुख पाने को।

क्षितिज के उस पार एक मदिरालय है जहाँ जीवन की मस्ती बंटती है। मदिरालय और जीवन की मस्ती के शब्द ही ऐसे लालच हैं जो दौड़ लगाने के लिए प्रेरित करते हैं। इसीलिए अपनी गति को गुणित करके बढने की बात कही गई है। परन्तु क्षितिज तो दूर ही दूर चला जाता रहता है, उसको तो कोई लाँघ नहीं सकता। जितनी दूर हमारी दृष्टि देख सकती है उतनी ही दूर नहीं है। क्षतिज तक पहुँचना या उसे पार करने का विचार ही अव्यवहारिक है।

साधक समझा रहे हैं कि सांसारिक प्राप्तियाँ मोह और आकर्षण पैदा करती हैं। उन प्राप्तियों के लिए दौड़ लगाएँगे तो क्षितिज दूर ही दूर बना रहेगा। अर्थात् सांसारिक हर प्राप्ति उसके प्रति और अधिक मोह और आकर्षण पैदा करती है और उसी के लिए अपनी दौड़ बढाते रहते हैं। परन्तु न मोह टूटता है, न आकर्षण समाप्त होता है, संतोष आता ही नहीं। लेकिन यदि इन सांसारिक प्राप्तियों और तथाकथित मौज मस्ती से विपरीत यदि हम साधना प्रक्रिया से अपने कर्तव्य पालन मार्ग पर बढते हैं तो ये प्राप्तियाँ हमारे पीछे दौड़ेगी।

सामान्य रूप से मनुष्य भौतिक सुख, संपत्ति, साधन के लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ करने के बाद भी अपनी इच्छा के अनुरूप प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि इच्छा बढती ही जाती है। लेकिन वही मनुष्य भौतिक उपलब्धियों को लात मारकर, लिप्तता समाप्त कर जब आध्यात्म मार्गी बनता है, ईश्वर प्राप्ति की ओर बढता है तो भौतिक संपत्ति उसके चरण चूमती है, अब उसकी उसे कोई आवश्यकता नहीं है।

मेरी साधना के विचारों का स्तर बहुत ऊँचा है। पहले अवतरण से अन्तिम अवतरण तक उसका स्तर बढता ही जाता है। हम सामान्य लोग उस ऊँचाई तक मुश्किल से पहुँच पाते हैं। इस अवतरण और आगे के अवतरणों को समझने में बुद्धि असमर्थ सी लगती है। इसलिए जैसा कुछ समझ में आया, वही प्रकट किया गया है। कोई यह न समझ ले कि जो कहा गया है वही पुस्तक का मूल्य है। यह प्रवृति तो महामूल्यवान है। समुद्र का पानी तो अगाध है, किन्तु हमारी मटकी या घड़े में जो समाये उतना ही हम ले सकेंगे।

अर्क– प्रभुता प्राप्ति के लिए पुण्य बोना पड़ता है।

(क्रमशः)

नये लोगों को जिन बाधाओं का सामना करना पड़ता है, यही पुरानों के सामने होती तो वे कभी के समाधि में बैठ गये होते। पुरानी पीढी से नई पीढी कहीं अधिक सहनशील और सामञ्जस्यपूर्ण है। लोग पुरानों के लिए रोते हैं, प्रश्न पूछते हैं, लेकिन उन्हें मालूम नहीं, कि वे खुद उन लोगों से कितने श्रेष्ठ निकले हैं। जिन परीक्षाओं में नये गुजरे हैं, वे ही परीक्षाएँ पुरानों को चकनाचूर कर डालती। इसलिए अब मुझे कोई कहे, कि साधना के लिए स्वर्णिम युग बीत गया है, अथवा चल रहा है, तो मैं यही कहूंगा कि वर्तमान भूतकाल से कहीं अच्छा है और भविष्य वर्तमान से भी कहीं अधिक उज्ज्वल है। हमारी परम्परा को जाज्वल्यमान बनी रहने का वरदान हासिल है।

– पू. तनसिंहजी की डायरी से

प्रणाम मेरी प्रेरणा-1

– कृपाकांक्षी

(श्री क्षत्रिय युवक संघ अपने स्वयंसेवकों के लिए अक्षय प्रेरणा का स्रोत है। संघ के संस्थापक पूज्य तनसिंहजी का प्रकटीकरण संघ के स्वयंसेवकों में अंशत: कमोबेश होता है और उसी रूप में उनका वह प्रकटीकरण साथ चलने वालों के लिये प्रेरणा बनता है। ऐसी प्रेरणा को प्रणाम करना मूल रूप में पूज्य तनसिंहजी को ही प्रणाम करना है। ऐसी प्रेरणाओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए यह लेखमाला प्रस्तुत की जा रही है।)

श्री क्षत्रिय युवक संघ की शिक्षण प्रणाली में शाखा आधारभूत अंग है। यही वह अंग है जो संघ के शिक्षण को अभ्यास द्वारा दृढ़ता प्रदान करता है। जिस नियमितता और निरंतरता की बात संघ करता है वह शाखाओं के माध्यम से ही प्रकट होती है। शाखा संघ का आधार है, प्रारम्भ भी है तो परिणाम भी है। प्रारम्भ इस दृष्टिकोण से है कि इसके द्वारा ही व्यक्ति संघ की ओर वास्तविक रूप से आकर्षित होता है। आकर्षण के साथ वास्तविक शब्द इसलिए जोड़ा गया है कि इसके अलावा शेष सभी आकर्षण अल्पकालिक होते हैं जिनका सीमित प्रभाव होता है लेकिन शाखा की नियमितता और निरंतरता के माध्यम से संघ के वास्तविक व पूर्ण स्वरूप को समझने का जो आकर्षण पैदा होता है वह दीर्घजीवी आकर्षण होता है और उसी के बल पर स्वयंसेवक के स्थायी संघ जीवन की नींव लगती है। इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि संघ का मूल काम शाखा लगाना है। यह आधारभूत काम है इसलिए आसान भी नहीं है। कभी-कभी कोई स्नेह मिलन आयोजित कर लेना, कोई यात्रा कर लेना या कोई एक शिविर कर लेना तो आसानी से संभव हो सकता है लेकिन नित्य एक ही काम करना, निश्चित समय पर करना, निश्चित स्थान पर करना, सदैव एक जैसे लोगों के साथ करना और उसे सदैव रोचक बनाये रखना सर्वाधिक मुश्किल काम है। इसमें आपको स्वयंसेवक को केवल जोड़ना ही नहीं है बल्कि उसे नियमित रखते हुए शिविरों में भी ले जाना है, उसकी रुचि के अनुसार स्वयं के तरीकों को अद्यतन भी करना है, उसके अभिभावकों से निकट संपर्क बनाकर उनसे सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाना है, स्वयंसेवक के घर के जीवन के बारे में उनसे जानकारी भी लेना है और ज्यों ज्यों उस स्वयंसेवक का स्तर बढ़ता जाता है तद्नुरूप अपना स्तर भी बढ़ाना है।

शाखा लगाने वाले को मित्र भी बनना है तो शिक्षक भी बनना है। उसे स्वयंसेवक को खुश भी रखना है तो उसका नियमन भी करना है और सबसे बड़ी बात कि यह सब नित्य करना है, नियमित रूप से करना है। इसलिए शाखा को संघ का आधार कहा गया है और पूज्य तनसिंहजी के उन अनुयायियों से अधिक प्रेरणा किसी अन्य से क्या मिलेगी जो नियमित शाखा लगा रहे हैं। जब इस विषय पर सोचना प्रारम्भ करते हैं तो अनेक ऐसे चेहरे नजरों के सामने तैरने लगते हैं जिनमें पूज्य तनसिंहजी इस रूप में विराजमान हो नियमितता एवं निरंतरता की प्रेरणा देते हैं, उनमें स्थित उस प्रेरणा को प्रणाम है। ये चेहरे केवल नियमितता और निरंतरता की ही प्रेरणा नहीं देते बल्कि निष्काम भाव से अहर्निश कर्म की भी प्रेरणा देते हैं।

संघ के अनेक स्वयंसेवक वर्षों से किसी सुदूर गाँव में बिना किसी दिखावे के छोटे-छोटे बच्चों के साथ नियमित शाखा लगाते हैं। वे कहीं स्वयं को प्रकट नहीं करते, कभी उनका नाम अखबार में नहीं छपता, कभी समाज उनके द्वारा सहज ही में किए जाने वाले इस अहर्निश: कर्म की प्रशंसा नहीं करता बल्कि बच्चों का खेल कह कर अपनी समझ के बोझ से दबे जा रहे नासमझ उनका उपहास भी कर देते हैं लेकिन फिर भी वे निष्काम भाव से प्रशंसा और निंदा की परवाह किए बिना संघ की कार्यप्रणाली के आधारभूत काम को वर्षों से किए जा रहे हैं। ऐसे में संघ में काम करने वाले

व्यक्ति के लिए निष्काम भाव की प्रेरणा का इससे बड़ा स्रोत क्या हो सकता है और इस स्रोत को प्रणाम करने से भी प्रेरणा मिलती है तथा प्रेरणा लेकर भी प्रणाम करने को मन करता है। साधना की ऐसी अवस्था जो न निंदा से प्रभावित होती है और न प्रशंसा की चाह रखती है, उच्च अवस्था मानी जाती है और इसीलिए आलेख में 'शाखा' को संघ साधना का प्रारम्भ और परिणाम दोनों कहा है। नये आने वाले व्यक्ति के लिए यह प्रारम्भ है वहीं वर्षों से शाखा लगाने वाले व्यक्ति में यह परिणाम प्रकट करती है। संघ के शिविरों में, किसी स्नेहमिलन में, किसी यात्रा में जब ऐसे स्वयंसेवक के दर्शन का लाभ मिलता है तो अन्तर सहज ही उनके प्रति नतमस्तक होता है, मौन प्रणाम घटित होता है और वह प्रणाम प्रेरणा प्रकट करता है। ऐसा लगता है कि पूज्य तनसिंहजी ने जिस नियमितता की बात कही है, जिस निरंतरता की बात कही है, जिस अहर्निश कर्म की बात कही है, जिस निष्काम भाव की बात कही है वह साकार होकर सामने खड़ा है और पूज्य तनसिंहजी की शिक्षा के साकार रूप को संघ का कौन स्वयंसेवक होगा जो प्रणाम करना नहीं चाहेगा, उससे उसे प्रेरणा नहीं मिलेगी? परमेश्वर के कृपा प्रसाद से मुझे भी उस पथ का पथिक होने का अवसर मिला है इसलिए पूज्य तनसिंहजी के इन अंशों का यह प्रकट स्वरूप मेरे लिए प्रेरणा है और मेरी इसी प्रेरणा को मैं प्रणाम करता हूँ।

❑

क्योंकि मैं साधक हूँ

– श्री साधक

स्वभाव से कुछ करता रहता, कभी न होता तुष्ट।
क्योंकि मैं साधक हूँ।
सभी द्वन्द्वों से संघर्ष करता, रहता सदा मैं मस्त
क्योंकि मैं साधक हूँ।
लाडला हूँ संघ का, सम्भालता मुझे वह हर पल
दोष मेरे असह्य उसको, अभिशापों को करूँगा नष्ट
क्योंकि मैं साधक हूँ।
बाँह ले ली है जब से उसने, फिसलन का नहीं डर
क्या होगा, चिन्ता नहीं, रहता सदा आश्वस्त
क्योंकि मैं साधक हूँ।
मुझमें धड़कन परम्परा की, स्पन्दन फर्ज तपस्या की
साथी साथ गाता सुनता, रहता सदैव मैं व्यस्त
क्योंकि मैं साधक हूँ।
फुरसत हो, आओ, देखो, छोड़ माया के खेल
प्रत्यक्ष होगा क्या होता है, गीता का स्थितप्रज्ञ
क्योंकि मैं साधक हूँ।
शिक्षक को मैं अनुसरता, शाखा-शिविर में जाऊँ
कोई चाहे कुछ भी कहे, सदा रहता मैं स्वस्थ
क्योंकि मैं साधक हूँ।

गतांक से आगे

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

पृथ्वीराज चौहान–इतिहास की धुंध पर एक प्रकाश : पृथ्वीराज पर ऐतिहासिक स्रोत, भाग–2

पिछले अंक में हमने पृथ्वीराज चौहान के इतिहास पर प्रकाश डालते कुछ प्रसिद्ध ग्रंथों का आंकलन शुरू किया था।

पृथ्वीराज विजय के बाद हमने देखा कि पृथ्वीराज रासो की प्राप्त प्रतियों के आधार पर इसका रचनाकाल 1590 से 1600 ईस्वी आया। उस अनुसार मौखिक अस्तित्व 15वीं सदी के उत्तरार्ध तक पीछे लाया जा सकता है। इसके साथ उल्लेखनीय है 15वीं सदी के पृथ्वीराज-प्रबंध और रासो के बीच कुछ कौतूहल जगाती समानताएँ (आगे वर्णित)।

वैसे दावे तो रासो को 13वीं सदी तक ले जाने के भी किये गए हैं। लघुतम रासो के चार छंद पुरातन प्रबंध नामक जैन संकलन के दो ग्रन्थों–पृथ्वीराज प्रबंध व जयचंद्र प्रबंध में भी पाए गए हैं। जयचंद्र प्रबंध में लिखित छंदों में लेखक का नाम जल्हा है जिसे चंदवराई का पुत्र बताया जाता है। इसके अतिरिक्त 15वीं सदी की उपदेश तरंगिणी व 13वीं सदी की साहित्य मीमांसा से भी रासो का एक-एक छंद साझा है।[1] पर क्या इससे पूरा रासो 13वीं सदी का सिद्ध हो जाता है?

भाषा के आधार पर पृथ्वीराज प्रबंध व जयचंद्र प्रबंध की रचना 1450 ई. या उसके एक-दो दशक आगे पीछे तक मानी गयी है। रासो से समानता रखते इन चार छंदों की भाषा लाटीय अपभ्रंश है। पर लाटीय अपभ्रंश का अपना काल विस्तृत है, सो चार छंदों की ये समानता इनकी रचना 13वीं सदी के होने की मात्र सम्भावना व्यक्त करती है, उसे सिद्ध नहीं करती। पर कुछ लोगों ने इन समानताओं को पकड़ कर घोषणा कर दी, कि इससे रासो का मूल स्वरूप 13वीं सदी के लाटीय अपभ्रंग ग्रन्थ रूप में सिद्ध हो जाता है।

माना कि इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। पर बिना किसी एकसार रचना तत्व के जहाँ-तहाँ घुसाए गए कुछ तितर-बितर छंदों के आधार पर एक पूरे ग्रन्थ को 13वीं सदी का नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जिन जैन साहित्यिक परम्पराओं से ये छंद साझा है उनमें भी छंद एक से दूसरे ग्रन्थ में साझा होना सामान्य बात है।[2]

इन चार छंदों में भी कुछ तो रासो के केवल मध्यम और वृहत संस्करणों से ही साझा है। जिससे दो सम्भावनाएँ बनती हैं।

1. ये छंद रासो (छोटे संस्करण) बनने के बाद में रासो पर प्रक्षेपित हुए अतएव बड़े संस्करणों में ही मिले।

2. रासो के छोटे संस्करण रचनाकाल से पृथ्वीराज प्रबंध व जयचंद्र प्रबंध के निकट हैं, इस कारण कुछ (पर बड़े संस्करणों से कम) छंद साझा है।

कुछ समानताओं के बाद भी रासो व प्रबंधों के कथानक में इतने अन्तर हैं कि हम स्पष्ट रूप से यह नहीं कह सकते कि केवल किसी एक (और किसने?) ने दूसरे से सामग्री ग्रहण की है।

सम्भव है कि ये छंद किसी ऐसे ग्रन्थ या संकलन से आते हों जिसका उपयोग समय-समय पर अनेकों ने अपने-अपने तरीके से किया और इस प्रकार छंद इन ग्रन्थों (जिनमें रासो भी है) को जोड़ती कड़ी बन गए जहाँ आगे के भाटों ने इन्हें अलग-अलग नामों से उतार लिया, कहीं चंदवरदाई तो कहीं जल्हा।

अब्दुल रहमान द्वारा लिखित संदेश रासक अपभ्रंश का प्रसिद्ध ग्रन्थ है।[3] इसकी रचना 12वीं सदी के मध्य की है जब अपभ्रंश भाषा अपने अंत पर आ चुकी थी।

1. पृथ्वीराज रासो की विवेचना, पृ. 732-33
2. Last Hindu Empereor Prithviraj Chauhan & Indian Past 1200-2000, Cynthia Talbot, Pg 279-80
3. जिनविजय सूरि द्वारा सम्पादित

इस रचना के कुछ समय बाद ही पृथ्वीराज का जन्म हुआ। पर रासो के लघुतम (तथाकथित प्राचीनतम) संस्करण से संदेश रासक की तुलना करने पर इतना भाषाई अन्तर दिखाई देता है, कि पूरा रासो तो क्या उसके किसी बड़े भाग को भी 1300 ई. तक का मानना असम्भव हो जाता है।

जैन प्रबंधों और रासो में साझा मिले उन 5-6 छंदों का अस्तित्व 13वीं सदी का मान लेने से भी रासो के रचना काल पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बस इतना कहा जा सकता है कि ये छंद आरम्भ में मौखिक प्रसार से जीवित रहे और आगे लिखित साहित्य में इनके प्रवेश के कुछ समय बाद ही अलग-अलग ग्रन्थ इन्हें अपने अनुरूप ढाल कर उपयोग लेने लगे। साथ ही छंदों के इस लेन-देन से यह भी ज्ञात होता है कि रासो का मूल मौखिक रूप पृथ्वीराज प्रबंध व जयचंद प्रबंध की रचना 1471 ई. के आसपास की ही है।

रासो के अनेकों कर्ताधर्ता होने का एक और परिणाम ये भी हुआ कि समय के साथ ज्यों-ज्यों संस्करण बढ़ते गए, त्यों-त्यों पृथ्वीराज के चहुं ओर गौरव के भागीदार बने राजपूत वंश, व्यक्तिगत खड़े होते गए और उनकी भूमिका भी उतनी ही बढ़ती गयी। वैसे तो विद्वानों में सहमति है कि रासो के बड़े संस्करण किसी भी ऐतिहासिक अनुसंधान के लिए उपयोगी नहीं। पर छोटे संस्करण भी मिथकों व त्रुटियों से बुरी तरह ग्रसित हैं। उदाहरण के लिए लघु संस्करण के दो शब्द लें- हथनारि (बन्दूक) व जबूर (छोटी तोप)[1]। अगर प्राचीनकाल में न जाएँ, तो भी मध्ययुगीन भारत में ऐसे शस्त्रों का ज्ञान व उपयोग 16वीं सदी के आरम्भ में जहीरुद्दीन बाबर के आसपास ही आता है, उससे पहले नहीं।

रासो का रचना क्रम :

रासो की रचना और इसका विकास कैसे हुआ यह जानना भी अपने आप में इतिहास की कुछ नई परतें खोल देता है। रासो के लघुतम संस्करण की अधिकतर घटनाएँ और लघु संकरण में, लघु के मध्यम में और आगे इसी प्रकार वृहत तक मिलते हैं। पर स्वाभाविक लगती इस संरचना में कुछ सलवटें भी हैं। जिससे यह कहना सम्भव नहीं कि एक सरल काल-क्रम में सबसे पहले लघुतम संस्करण पूरा होने के बाद लघु आया, उसके बाद मध्यम व अंत में वृहद। यह आपत्ति इसलिए भी तर्क-संगत है कि रासो के सभी संस्करण एक दूसरे से सदियों की दूरी नहीं रखते। लघुतम, लघु और मध्यम संस्करण तो कुछ ही दशकों में एक के बाद एक प्रकाश में आए हैं।

स्थिति स्पष्ट करने के लिए उसे तीन संभावनाओं में बांटना होगा :

1. समय के साथ जैसे रासो की लोकप्रियता बढ़ी वैसे ही इसमें राजनैतिक व सांस्कृतिक काल-संदर्भ अनुसार कथाओं व अन्य अशुद्धियों का प्रक्षेप बढ़ा और इस प्रकार छोटे से बड़े संस्करण बने।

2. या क्रम उल्टा था, यानी बड़े संस्करण जो पहले आए, उनमें अशुद्धियाँ देख उन्हें हटाने के लिये छोटे संस्करण बनाये गए।

3. संस्करणों के लेखन काल परस्पर-व्याप्त होने, भाषा व सामग्री की तुलना आदि से यह कहा जा सकता है कि हर संस्करण एक अलग परम्परा से संचालित था और ये संस्करण एक सीमा तक समकालीन विकसित हुए, केवल क्रम से नहीं।

मूल रासो के सबसे निकट निश्चित रूप से छोटे संस्करणों में से ही कोई रहा होगा।

रासो के विषय में दो बिन्दु दृढ हो जाते हैं, जो इसके कालखंड और ऐतिहासिक उपयोगिता पर प्रकाश डालते हैं। एक यह कि इसके वर्तमान स्वरूप में बहुत से साहित्यिक विकास, संशोधन और प्रक्षेपों का योगदान है। दूसरा, किसी अन्य व्यक्ति/ग्रन्थ द्वारा पृथ्वीराज रासो का सबसे पहला उल्लेख 1650 ई.[2] में प्राप्त होता है, जो कि रासो विदित घटनाओं के कालखंड (12वीं सदी) से 4 सदियों से भी अधिक बाद का समय है। **(शेष पृष्ठ 26 पर)**

1. पृथ्वीराज रासो लघु संस्करण, पृ. 41
2. जसवंत उद्योत-दलपति मिश्र 1648 ईस्वी, सम्पादन-अगरचन्द नाहटा

गतांक से आगे

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

- स्वामी जगदात्मानन्द

भैरव के साथ निर्भय वार्तालाप :

पंचवटी दक्षिणेश्वर का एक निर्जन स्थान है, जहाँ श्रीरामकृष्ण ने विविध साधनाएँ की थीं। उनकी अद्वैत-साधना के गुरु, तोतापुरी, परम निर्भय थे। उनकी निर्भयता के भाव को प्रदर्शित करने वाली एक घटना है। एक बार गहरी रात में वे वहाँ धूनी जलाकर ध्यान में बैठने की तैयारी कर रहे थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। झींगुरों और मन्दिर के ताखों में बैठे उल्लुओं की आवाज के सिवा कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा था। हवा भी शान्त थी। सहसा पंचवटी के वृक्षों की शाखाएँ हिलने लगीं और मानव-सदृश एक भीमकाय व्यक्ति वृक्ष से नीचे उतरा और तोतापुरी जी की ओर आँखें गड़ाए धीरे-धीरे धूनी के पास आकर बैठ गया। उसे देख विस्मित होकर तोतापुरी ने उसका परिचय पूछा। उत्तर मिला, ''मैं देवयोनि भैरव हूँ; इस देवस्थान की रक्षा हेतु वृक्ष पर रहता हूँ।'' उससे जरा भी भयभीत हुए बिना पुरीजी बोले, ''ठीक है, तुम जो हो, मैं भी वही हूँ। तुम भी ब्रह्म के प्रकाश हो और मैं भी; आओ, बैठो, ध्यान लगाओ।'' भैरव हँसते हुए हवा में विलीन हो गया। तोतापुरी इस घटना से जरा भी विचलित हुए बिना ध्यान करने लगे। अगले दिन जब उन्होंने यह घटना श्रीरामकृष्ण को बताई, तो वे बोले, ''हाँ, वे यहीं रहते हैं। मुझे भी कई बार उनका दर्शन मिला है। कभी-कभी उन्होंने मुझे भविष्य में होने वाली कुछ घटनाएँ भी बतायी थीं।''

तोतापुरी उन अलौकिक जीवों के सच्चे स्वरूप को जानते थे, इसलिए वे निर्भयतापूर्वक भैरव का सामना कर सके।

पर कुछ ऐसे दुर्बल-हृदय लोग भी होते हैं, जो अपनी कल्पना में ही विचित्र भूत-प्रेतों की सृष्टि करके उनसे पीड़ित रहते हैं। कल्पना के आधिक्य से होने वाली ऐसी गड़बड़ियों से छुटकारा पाने में मनो-चिकित्सक हमारी सहायता कर सकते हैं।

यदि कहीं भूतों से भेंट भी हो जाए, तो हमें उनसे डरने की जरूरत नहीं है। वस्तुत: वे हमें डराते नहीं हैं। बचपन में उनके बारे में सुनी हुई भयानक कहानियों के कारण ही हमें उनसे डर लगता है। हमें एक अन्य दृष्टि से भी इस समस्या को देखना चाहिए। भूत-प्रेत ऐसी जीवात्माओं को कहते हैं, जो भौतिक शरीर छोड़ने के बाद सूक्ष्म रूप में रहती हैं। यदि हम हाड़-माँसवाले मनुष्यों से नहीं डरते, तो फिर हम इन अशरीरी भूत-प्रेतों से भला क्यों भयभीत हों? हम अपने भय के कारण के विश्लेषण का प्रयत्न किए बिना बेकार ही परेशान हो जाते हैं। हम क्या, कहाँ और कैसे-जैसे प्रश्न पूछने को अग्रसर नहीं होते। स्पष्ट है कि वास्तविकता के बारे में हमारे अज्ञान के कारण ही भय आता है। भूत-प्रेतों से भयभीत रहने वाले लोगों के भय को कुछ लोग यह कहकर खारिज कर देते हैं कि वह मानसिक दुर्बलता का शिकार है, या मनोविकार से ग्रस्त है, या अन्धविश्वासी है, आदि। ऐसे लोग भूत-प्रेतों के अस्तित्व से ही इन्कार करते हैं। ये लोग भूत-प्रेतों को भ्रान्ति कहते हैं और बुद्धिवादी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले कहलाए जा सकते हैं परन्तु ये लोग भयाक्रान्त लोगों को राहत कदापि नहीं पहुँचा सकते। उन्हें स्वयं भय के मूल का कोई ज्ञान नहीं होता और वे सर्वदा दूसरों की सुनी-सुनाई बातें तोतों की भाँति रटते रहते हैं कि 'भय तो केवल मनोवैज्ञानिक होता है'-और इस प्रकार वे दूसरों के भय को तुच्छ मानते हैं। कोई भी रोगी ऐसे लोगों के समक्ष अपनी समस्याएँ, आशंकाएँ तथा चिन्ताएँ खोलकर नहीं रख सकता। भय के सच्चे स्वरूप को समझ लेने वाले लोग ही दूसरों को भयमुक्त करने में मदद कर सकते हैं। वे ही भय को दूर रखना जानते हैं।

हतबुद्धि प्रेतात्माएँ :

एक बार श्रीरामकृष्ण ने अपने शिष्यों को अपना एक विचित्र अनुभव बताया था। स्वामी सारदानन्द ने 'श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग' नामक अपने ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है। एक बार भक्तिमती गोपाल-की-माँ के निमंत्रण पर अपने शिष्य राखाल (बाद में स्वामी ब्रह्मानन्द) के साथ श्रीरामकृष्ण उनके घर गए। भोजन के बाद वे विश्राम कर रहे थे। थोड़ी देर बाद कमरे के एक कोने से कुछ दुर्गन्ध आने लगी। शीघ्र ही उस कोने से दो बीभत्स मूर्तियाँ प्रकट हुईं। उनके शरीर से अँतड़ियाँ लटक रही थीं और वे मेडिकल कॉलेज के संग्रहालय के कंकाल-जैसे दिख रहे थे। वे विनयपूर्वक श्रीरामकृष्ण से बोले, 'आप यहाँ क्यों आए हैं? कृष्ण यहाँ से चले जाइए। आपके दर्शन से हमें अपनी दशा का स्मरण हो आने के कारण बहुत कष्ट हो रहा है।' एक ओर तो ये प्रेतात्माएँ श्रीरामकृशण से चले जाने की विनती कर रही थी और दूसरी ओर राखाल सो रहे थे। उन प्रेतों का कष्ट देखकर श्रीरामकृष्ण ने अपना बटुआ और झोला उठाया और चलने को तैयार हुए। तभी राखाल जाग गए और श्रीरामकृष्ण से पूछने लगे, 'आप कहाँ जा रहे हैं?' श्रीरामकृष्ण बोले, 'मैं तुम्हें बाद में बताऊँगा।' ऐसा कहकर उन्होंने राखाल का हाथ पकड़ा और गोपाल-की-माँ से (जिनका भोजन तभी समाप्त हुआ था) विदा लेकर नाव में जा बैठे। वहाँ श्रीरामकृष्ण ने उन्हें बताया, 'उस घर में दो भूत हैं, जो अंग्रेजों द्वारा फेंकी गयी हड्डियों को सूंघकर अपना पेट भरते हैं। उस घर में अकेली रहने वाली वृद्धा को यह बताना मैंने उचित नहीं समझा।'

भूत-प्रेतों की अपनी समस्याएँ तथा पीड़ाएँ होती हैं। वे आपकी मदद पाने हेतु आपके सम्मुख प्रकट हो सकते हैं। उनकी मुक्ति के लिए प्रार्थना के बजाए यदि आप भय से आक्रान्त हो जाते हैं, तो भूत-प्रेत निराश हो सकते हैं। जैसे मनुष्यों में दुष्ट लोग रहते हैं, वैसे ही उनमें भी दुष्ट भूत-प्रेत हो सकते हैं; परन्तु उनसे भयभीते होकर हम समस्या को और भी बदतर बना डालते हैं। हमें दृढ़ता के साथ उस स्थिति का सामना करना चाहिए। समस्या का मुकाबला करना सम्भव है। उसका मुकाबला करने के लिए साधन और उपाय भी हैं। हमें व्यर्थ ही घबड़ाना और परेशान नहीं होना चाहिए।

डटकर सामना करो :

बात उन दिनों की है जब स्वामी विवेकानन्द एक परिव्राजक के रूप में भ्रमण कर रहे थे। एक बार वे वाराणसी में ठहरे हुए थे। वे दुर्गा-मंदिर से दर्शन करके लौटते हुए एक सँकरे रास्ते से होकर चल रहे थे, जिसके एक ओर दीवाल और दूसरी ओर एक बड़ा तालाब था। उस सँकरे मार्ग से होकर जाते समय उनके सामने बन्दरों का एक झुण्ड आ गया। बन्दर उन पर झपट पड़े और विकट चीत्कार करते हुए उनके पाँवों में लिपटने लगे। उन्हें पास देखकर स्वामीजी मुड़कर भागने लगे। बन्दरों ने उनका पीछा किया। उनसे बच निकलने का कोई मार्ग न था। तभी एक वृद्ध संन्यासी ने चिल्लाकर कहा, 'ठहरो और सामना करो!' स्वामीजी ने पीछे मुड़कर उत्पाती बन्दरों का सामना किया। जब उन्होंने साहसपूर्वक बन्दरों की ओर देखा तब बन्दर धीरे-धीरे पीछे हटते हुए भाग निकले।

वर्षों बाद अपने न्यूयार्क के व्याख्यान में स्वामीजी ने इस घटना का उल्लेख करते हुए इससे प्राप्त शिक्षा की ओर संकेत किया था-'जीवन भर के लिए यह एक सीख है-जो कुछ भयानक है, उसका सामना करो, साहसपूर्वक उसका मुकाबला करो। जब हम जीवन की कठिनाइयों से भागना छोड़ देते हैं, तो वे भी उन बन्दरों की ही भाँति पीछे हट जाती हैं। यदि हमें स्वाधीनता अर्जित करनी है, तो यह हमें भागने से नहीं, बल्कि प्रकृति पर विजय प्राप्त करने से मिलेगी। कायर कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकता। यदि हम भय, कष्ट तथा अज्ञान को दूर करना चाहते हैं, तो हमें उनसे संघर्ष करना होगा।'

भय को प्रश्रय न दो :

एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना पर विचार करो, जिसमें स्वामी विवेकानन्द ने प्रचण्ड साहस के साथ एक भयंकर

(शेष पृष्ठ 28 पर)

गतांक से आगे

यदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराजपालसिंह इनायती

बयाना के विजय मंदिर गढ़ के अबू बक्र कंधारी के हाथों पराभव के बाद विजयपाल के सबसे बड़े बेटे तिमनपाल ने अगले 12 बरसों तक बयाना और आज के करौली के बीच के घने जंगलों में अधिकांश समय बयाना के पतन के बाद इधर-उधर बिखरे अपने भाई बन्धुओं को एक जगह एकत्रित करने में लगाया। इसी दौरान घने जंगल में तिमनपाल की मुलाकात एक संत से हुई जिन्होंने उसे पारस पत्थर दिया। यह उल्लेख आता है कि तिमनपाल ने उस पारस पत्थर की मदद से बहुत सारा सोना बनाया और त्रिभुवन गिरी पर अपने नाम से तिमन-गढ़ नाम का नया नगर ईस्वी सन् 1058 में बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। वह भूमि कर और अन्य तरह की सभी राजकीय वसूली में केवल लोहा लिया करता था, यही कारण था कि केवल एक पीढ़ी के उसके शासनकाल में ही तिमनगढ़ का वैभव आसमान को छूने लगा था और आज भी जिसके अवशेष अपने स्वर्णिम काल की गाथा का बखान करते देखे जा सकते हैं। लाल बलुआ पत्थर की स्थानीय उपलब्धि और उसके ऊपर काम करने वाले स्थानीय तथा दूर-दूर से आए हुए कारीगरों ने यदि यह कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिन्दू वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार तिमनगढ़ में पत्थरों में कविताएँ गढ़ दीं। आज भी एक छतरी में ऊपर गुम्बद के लिए काम में लिए हुए डिजाइन को देखकर मैं स्वयं आश्चर्य चकित रह गया क्योंकि बिल्कुल यही डिजाइन मैंने तत्कालीन आंध्रप्रदेश के रामप्पा मंदिर में भी देखी, जो मेरी बात की पुष्टि करती है कि पूरे भारतवर्ष में नगर नियोजन, भवन निर्माण और मंदिर निर्माण मानसोल्लास आदि हिन्दू वास्तु ग्रंथों के सूत्रों के अनुसार ही किया जाता था, इसीलिए देश भर में एकरूपता पाई जाती है। तिमनपाल वास्तु प्रेमी होने के साथ-साथ विद्वान भी था जो अपने यहाँ सभी तरह के विद्वानों का आदर करता था। इस संदर्भ में एक बार किसी विद्वान से वह बहुत प्रभावित हुआ और उनसे मुँह माँगी वस्तु देने की प्रतिज्ञा कर ली। उस पंडित ने उनसे कहा कि जो आप की सबसे अधिक प्रिय वस्तु हो वही मुझे दे दीजिए। वचन के पक्के तिमनपाल ने एक मखमल जड़ित छोटी-सी संदूकची में रखकर वही पारस पत्थर उनको भेंट कर दिया। पंडित जी उसको लेकर वहाँ से विदा हो गए लेकिन जिज्ञासावश गढ़ से बाहर निकलते ही सागर तालाब के किनारे बैठकर उस संदूकची को खोला तो देखा कि एक छोटा-सा पत्थर रखा हुआ है। पंडित जी ने गुस्से में आकर उस पत्थर को तालाब में फेंक दिया और वह संदूकची किसी के हाथों वापस राजा को भेज दी। जब राजा को मालूम चला तो सागर तालाब में पारस की तलाश में हाथियों के पैरों में लोहे की जंजीरें डालकर घुमाया गया लेकिन उस पारस का पता नहीं लगा। अभी कुछ बरसों पूर्व तक भी स्थानीय नवयुवक उसमें पारस तलाश किया करते थे। तिमनपाल ने लगभग 50 वर्षों तक शान्तिपूर्वक शासन किया, उसके शासनकाल में और बाद में उसके पुत्र धरमपाल प्रथम के समय में भी वहाँ पर जैन धर्म का भी खूब बोलबाला रहा, जिसके कुछ शिलालेख आज भी तस्करों की निगाह के बाद भी सुरक्षित हैं जो देखे जा सकते हैं। तिमनपाल के दो पुत्र धर्मपाल और हरपाल (कहीं कहीं पर हरपाल/हरिपाल भी नाम आता है) थे। राजा तिमनपाल की मृत्यु के बाद धर्मपाल उनके उत्तराधिकारी बने। धर्मपाल प्रथम ने अपने जीवनकाल में ही मथुरा और ग्वालियर के बीच में चम्बल के उत्तरी किनारे पर धोल डेरा नामक किला बनाया जिसे आज धौलपुर के नाम से जाना जाता है। इसके खंडहर आज भी धौलपुर चम्बल पुल से पहले बांयीं तरफ देखे जा सकते हैं।

धर्मपाल को शासन मिलने से उनका छोटा भाई हरपाल खुश नहीं हुआ और वह मुस्लिम आक्रांताओं से मिलकर बयाना का किलेदार बन गया। लेकिन वह इतने से भी खुश नहीं था, उसकी नजर तो सांस्कृतिक रूप से समृद्ध हुए नए राज्य तिमनगढ़ पर थी। मुस्लिम आक्रांताओं की सहायता से उसने तिमनगढ़ पर धावा बोला और धर्मपाल की जगह खुद तिमनगढ़ का शासक बन गया। राजा धर्मपाल ने अपने भाई से युद्ध करना ठीक नहीं समझा और उसने धोलडेरा पलायन कर लिया। लेकिन राजा धर्मपाल के बेटे कुँवर पाल ने हिम्मत नहीं हारी, और वह तिमनगढ़ के पास ही अपने बनाए कुंवरगढ़ी में रहकर अपने पिता को वापस अपना राज दिलाने की लगन में लग गया। अन्त में हरपाल को हरा कर फिर से तिमनगढ़ में पिता धर्मपाल को गद्दी पर बैठाने में सफल हो गया। ख्यात के अनुसार उसने बयाना पर भी फिर से एक बार अपना कब्जा कायम कर अपने पिता धर्मपाल प्रथम को बयाना और तिमनगढ़ की गद्दी पर बैठा दिया। कुछ ही समय बाद राजा धर्मपाल की मृत्यु के बाद कुंवरपाल प्रथम गद्दी पर बैठे। इधर मुस्लिम आक्रांताओं के आक्रमण भी बढ़ने लगे थे। ख्यात के अनुसार सम्वत् 1253 तद्नुसार ईसवी सन् 1196 में बयाना और तिमनगढ़ दोनों पर मोहम्मद गौरी ने अधिकार कर लिया और वहाँ अपने किलेदार नियुक्त कर दिए। राजा कुंवरपाल (कुंवरसेन नाम का भी उल्लेख आता है) ने वहाँ से पलायन कर धोलडेरा में अपना डेरा जमाया लेकिन वहाँ भी वह अधिक समय तक नहीं रह पाया और गौरी के ग्वालियर के आक्रमण के समय धोलडेरा भी कुंवरपाल के हाथों से निकल गया। यही समय था जब जदुवंशी विभिन्न स्थानों पर बिखर गए, राजा कुंवरपाल ने अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ रीवा के जंगलों में अंधेर कोटला नामक स्थान पर अपनी गढ़ी बनाई और राजा अर्जुनदेव तक की कुछ पीढियाँ वहीं रही। (यहाँ आकर राजा कुंवरपाल के समय के बारे में कुछ भ्रांतियाँ हैं, ख्यात के अनुसार 1196 में कुंवरपाल मोहम्मद गौरी से हारे लेकिन यह सम्भव नहीं लगता कि 1101 से 95 वर्ष तक कुंवरपाल का शासन रहा हो लगता यह है कि ख्यात में यहाँ पर कुछ नकल करने में गड़बड़ हुई है और 1196 में भी कुंवरसेन की जगह कुंवरपाल दर्ज हो गया हो।)

कुछ परिवार आज के अलवर के तिजारा की तरफ निकल गए तो कुछ परिवार फिरोजाबाद, एटा, अलीगढ़ और मैनपुरी की तरफ जाकर अपनी-अपनी छोटी-छोटी सी जमींदारियाँ कायम कर बस गए जो आज के कोटिला, उम्मरगढ़, आवागढ़, शाहगढ़ आदि हैं। यह समय जदुवंशियों के बिखराव का रहा और पलायन में इनके कुछ लोग आज के कौशांबी, बांदा आदि क्षेत्रों में तो, कुछ लोग इसी समय हाड़ोती होते हुए राघौगढ़, विदिशा आदि क्षेत्रों में पलायन कर गए जहाँ उनके वंशज आज भी आबाद हैं।

उपलब्ध वंशावली के अनुसार कुंवरपाल की मृत्यु के बाद उसके भाई अजयपाल, हीरपाल, मदन पाल अलग-अलग स्थानों पर चले गए, जिनमें मदनपाल ने मंडरायल में अपना ठिकाना बनाया लेकिन वह भी बहुत शीघ्र ही उसके कब्जे से निकल गया, आखिर में उसने मुस्लिम धर्म अपना लिया, गौंज और मेव उसी के वंशज कहे जाते हैं। अगली कुछ पीढ़ियाँ सोहनपाल, अनंगपाल या आनंदपाल, नागार्जुन, पृथ्वीपाल, राजपाल, त्रिलोकपाल, वपुल देव, आसिल देव, सासिल देव, भाल देव आदि ने अपना समय अंधेर कोटिला में ही निकाला। इन सभी के मन में अपनी पैतृक भूमि से दूर रहने का कष्ट साल रहा था, लेकिन ना समय अनुकूल था और ना ही उनके पास ऐसे साधन थे की वे अपनी मातृभूमि को फिर से हासिल कर सकते।

भाल देव के अर्जुन देव नाम के पुत्र हुए जो बहुत महत्त्वाकांक्षी होने के साथ कुशल रणनीतिकार भी थे। पूर्वजों की भूमि हासिल करने की दुर्दम्य इच्छा उनके मन में थी और समय ने भी उनका साथ दिया। यह 1325 ईस्वी सन् का वह समय था जब दिल्ली की गद्दी पर मुहम्म्मद तुगलक था और उसने अपनी राजधानी दिल्ली से दौलताबाद

स्थानान्तरित करने की योजना को मूर्त रूप देना शुरू किया था। इस दौरान मंडरायल के किले पर मियां माकन किलेदार तैनात था जो एक तरह से अपने आपको स्वतंत्र शासक जैसा ही व्यवहार करता था। अर्जुन देव ने इसी समय का फायदा उठाकर अपने साथियों के साथ चंबलों के बीहड़ों में होते हुए मंडरायल के पास पहुँचकर केवल कुछ चुने हुए सैनिकों के साथ घोड़ों के व्यापारी के रूप में डेरा जमाया। घोड़े दिखाने, साथ-साथ घुड़सवारी करने और शिकार के बहाने से किलेदार से दोस्ती कायम कर ली और मंडरायल के किले में निर्बाध आवाजाही प्राप्त हो गई। अर्जुन देव ने अपने शेष साथियों को आसपास के घने जंगलों और चम्बल के बीहड़ों में गुप्त रूप से रखा जो आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त उपलब्ध हो सकें। अच्छे संबंधों का लाभ उठाकर अर्जुन देव ने अपने घोड़ों और स्वयं के निवास के लिए मंडरायल से कुछ ही दूरी पर अपना घुड़साल और निवास बनाने के लिए पट्टा ले लिया और वहाँ पर एक छोटी सी गढ़ी बना ली जिसे हम आज नींदर के नाम से जानते हैं और इस गढ़ी के अवशेष आज भी अच्छी हालत में हैं। ईस्वी सन् 1327 में एक रात जब किलेदार मियां माकन अपने साथियों के साथ राग रंग में मस्त था तभी अर्जुन देव ने अपने साथियों के साथ हमला किया और वहाँ मौजूद सैनिकों को मार कर मंडरायल के किले पर कब्जा कर लिया। यही जदुवंशियों का पुन: अपने पूर्वजों की भूमि पर प्रथम कदम बना। किलेदार घायल अवस्था में किले से भागा लेकिन सलेमपुर (आज के गंगापुर सिटी के पास) में जाकर मर गया। मुहम्मद बिन तुगलक तक या तो मंडरायल के किले को खोने की खबर पहुँची ही नहीं होगी या राजधानी स्थानान्तरण में वह इतना व्यस्त था कि उसने ध्यान नहीं दिया। (यहाँ देवगिरी जिसका नाम मुहम्मद तुगलक ने बदलकर दौलताबाद कर दिया था के बारे में भी जानकारी करना उचित होगा। देवगिरी 11वीं शताब्दी में यदुवंशी दृढ़ प्रहार के वंशज राजा भिल्लम ने ही बनाया था जो अपने समय का एक अजेय किला था और आज के औरंगाबाद के पास स्थित है।)

अर्जुन देव ने मंडरायल के किले में अपने आपको राजा घोषित कर दिया और कुछ ही वर्षों के अंतराल में मंडरायल से पश्चिम में लोधों के बनाए किले उंटगिर पर भी अपना कब्जा कर लिया। राजा अर्जुन देव यहीं नहीं रुका बल्कि अब इस बीहड़ से बाहर निकलकर मुख्य धारा में अपने आपको स्थापित करने पर अपनी नजरें जमाई। शिकार के बहाने वह अब ऊपर के पठारी और मैदानी क्षेत्रों का दौरा करने लगे। ऐसे ही एक दिन वह आज की भद्रावती नदी के किनारे पर पहुँचे और वह जगह उनके मन को अपनी राजधानी बनाने के लिये भा गई। उन्होंने स्थानीय मचा मीणों का विश्वास हासिल किया और कार्तिक शुक्ल पक्ष एकादशी संवत् 1405 (तद्नुसार ईसवी सन् 1348) को बिरवास् की पहाड़ी पर अपनी कुलदेवी अंजनी माता के मंदिर की नींव डाली। इसी के साथ उसी दिन भद्रावती नदी के किनारे कल्याण राय जी के मंदिर के रूप में करौली की नींव डाली जो उस समय कल्याण राय की नगरी के रूप में जाना गया और समय के साथ अपभ्रंश होकर करौली बना। रहवास के लिए महल बनाए, वहाँ पर इस समय खिरनी के पेड़ थे इस वजह से बाहरी चौक को आज भी पुराने लोग खिरनी वाला चौक कहते हैं। साथ ही परकोटा बनाया जिसके खंडहर आज भी फूटा कोट के नाम से जाने जाते हैं।

राजा अर्जुन देव ने यद्यपि करौली की नींव डाली लेकिन उन्होंने अपनी राजधानी अभी भी बीहड़ों के बीच उंटगीर ही बनाए रखी। कल्याण राय जी का मंदिर आज के रावल किले के एकदम सामने ही स्थित है। जदुवंश में अर्जुन देव, भगवान श्रीकृष्ण, राजा विजयपाल और राजा तिमनपाल के बाद चौथे ऐसे महापुरुष हुए जिन्होंने अपने बाहुबल और बुद्धि से नई राजधानी बनाई।

राजा अर्जुन देव का स्वर्गवास सन् 1361 में होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र विक्रमाजीत करौली के सिंहासन पर बैठे और अपने पिता द्वारा विजित क्षेत्र पर उनकी तरह ही उंटगीर में रहते हुए ही राज करते रहे। राजा विक्रमाजीत के

शासनकाल में ना तो नया क्षेत्र जीता गया और न ही कोई क्षेत्र खोया। यह राजा अपने पिता द्वारा अपने पूर्वजों के क्षेत्र में वापस किए गये अपने कब्जे को मजबूत और स्थाई बनाने में कामयाब रहा। विक्रमाजीत के देहान्त के बाद अभयचंद सन् 1382 में गद्दीनशीन हुए। इनकी मृत्यु के बाद पृथ्वीराज सन् 1403 में करौली क्षेत्र के राजा बने। अब तक क्षेत्र में राज का दबदबा कायम हो चुका था, इसने अपनी फौजी ताकत बढ़ाई और अपना राज चंबल के दक्षिणी तरफ भी ग्वालियर तक बढ़ाया और तिमनगढ़ पर भी फिर से काबिज हो गए। पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद उदयचंद राजा बने और इनकी मृत्यु के बाद प्रताप रूद्र राजा हुए। सोलह वर्ष राज करने के बाद इनके बड़े बेटे चंद्रसेन राजा बने। इनके बारे में विवरण आया है कि यह बहुत बहादुर मगर संत प्रवृत्ति के महापुरुष थे जो सौ से भी अधिक वर्षों तक जीवित रहे। इनके पुत्र भारती चंद हुए मगर वह चंद्रसेन के जीवनकाल में ही स्वर्गवासी हो गए। उपलब्ध इतिहास के अनुसार चंद्रसेन के बाद उनके पुत्र गोपालदास करौली की राजगद्दी पर बैठे। चंद्रसेन के शासनकाल की सबसे प्रमुख घटनाओं में अकबर द्वारा आगरे के किले की नींव लगाने के लिये इनसे अनुरोध करना था जिसे उन्होंने अपनी वृद्धावस्था का कारण बताते हुए विनम्रता से अस्वीकार कर दिया लेकिन अपनी जगह अपने पौत्र गोपालदास को भेज दिया। गोपालदास के हाथों आगरा किले की नींव लगी यह तथ्य करौली की इतिहास पुस्तकों के अलावा आईने अकबरी में भी उल्लिखित है। इसी समय अकबर ने देवगिरी के किले को जीतने के लिये एक सेना भेजी उसके साथ गोपालदास को भी इनके गारद के साथ भेजा। राजा चंद्रसेन ने अपने पुत्र की सुरक्षा और दीर्घायु के लिए कैला माता की आराधना शुरू की और जब तक वह देवगिरी को विजय कर नहीं वापस आ गए तब तक कैलादेवी में अखंड ज्योति रखी तब से ही कैलादेवी में दीपक की अखंड ज्योति चल रही है। देवगिरी विजय में गोपालदास की बहादुरी और योगदान को देखते हुए अकबर ने वहाँ से जीता हुआ रणजीत नगाड़ा इनको विजय स्मृति चिह्न रूप में भेंट दिया, जिसकी वजह से करौली राज के शाही नगाड़े का नाम रणजीत नगाड़ा है। साथ ही 2000 का मनसब भी दिया और बहुत सारे धन असबाब के साथ अपने एक फौजदार के साथ करौली भेजा। राजा चंद्रसेन की मृत्यु के बाद गोपालदास गद्दी पर बैठे और उन्होंने मुगल शासक की सहायता से अपने पुश्तैनी क्षेत्र में चल रहे बलवों का सफलतापूर्वक दमन किया। आगरा से वापसी में इन्होंने मासलपुर में एक महल, बावड़ी और बाग बनवाया और वहाँ पर देवगिरी से लाई गई गोपाल जी की मूर्ति को पधराया। यह मूर्ति बाद में मदन मोहन जी मंदिर में ही दाहिनी तरफ प्रतिष्ठित की गई, जहाँ आज भी पूजा हो रही है। इनके शासनकाल में राज्य की सीमा चंबल पार विजयपुर, सबलगढ़ और पूर्व में सरमथुरा झिरी तक थी। अकबर ने इन्हें अजमेर का किलेदार बनाया जहाँ 1590 में इनकी मृत्यु हुई। यदि यह कहा जाए कि अर्जुन देव ने जो पौधा लगाया था उसने गोपालदास के समय में अच्छे बड़े वृय का रूप लेना प्रारम्भ किया। राजा गोपालदास के समय में ही करौली के दक्षिण में एक छोटा तालाब बंधवाया गया जो पहले बाई जी के ताल के नाम से जाना जाता था और बाद में यहाँ मराठाओं के साथ हुए एक युद्ध के बाद इसे रण गंवा के ताल के रूप में जाना जाता है। इनके ही समय में झिरी भोमपुरा के महलात भी बने। इस तरह से यह कहा जा सकता है कि अर्जुन देव जी का लगाया वृक्ष गोपालदास जी के समय तक खूब फलने-फूलने लगा था।

राजा गोपालदास जी की मृत्यु सन् 1590 में अजमेर में हुई और इनके बड़े पुत्र द्वारीकादास उत्तराधिकारी बने।

(क्रमशः)

जो निडर होकर पिता के वचन का अनादर करता है और बुरे लोगों के साथ रहता है, वह पुत्र मूर्ख और अधम है। उसके जन्म लेने से किसी को सुख नहीं मिलता।

– महात्मा विदुर

नारी सम्मान के आदर्श चरित्र

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।।

मनुस्मृति की उपरोक्त उक्ति में कहा है-जहाँ महिलाओं को आदर-सत्कार प्राप्त होता है, वहाँ देवताओं का वास होता है। जहाँ स्त्रियों को आदर नहीं मिलता वहाँ किए जाने वाले यज्ञ-पूजा आदि निष्फल होते हैं।

पौराणिक काल में या वैदिक काल में नारी जाति का पुरुष जाति के समान ही आदर-सम्मान होता था। उनको पुरुषों के समान ही अधिकार होते थे। भगवान शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप ही यह साबित करता है। पौराणिक काल में आर्यावर्त की नारियाँ शक्तिशाली, विदुषी, न्यायप्रिय और सुशासन कर्ता थी। राज्य सभाओं में, धर्म सभाओं में, ज्ञान-विज्ञान के शास्त्रार्थ में पुरुषों के समान ऋषि-मनीषियों के साथ सम्मिलित हो सकती थी और उनका बड़ा आदर-सम्मान होता था। आधुनिक प्रजातंत्र के प्रवर्तक कहे जाने वाले इंग्लैण्ड ने अपने देश में ईसा की सदी में प्रजातंत्र शासन प्रणाली अपनाई लेकिन महिलाओं को मताधिकार से वंचित रखा था और लगभग उन्नीसवीं सदी में ही उन्हें मताधिकार दिया था।

जब-जब जिस किसी ने नारी का अपमान किया उसके सर्वनाश का कारण नारी का अपमान ही बना। रावण ने सीताजी का अपहरण किया जो रावण सहित राक्षस जाति के सर्वनाश का निमित्त बना। हस्तिनापुर के युवराज दुर्योधन एवं उसके भाई दुशासन तथा दानवीर कर्ण ने भी भरी सभा में इन्द्रप्रस्थ की महारानी सती द्रोपदी का अपमान किया जो महाभारत के युद्ध के अन्य कारणों के साथ एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा और पूरे कौरव वंश का नाश हुआ। इस प्रकार कई ऐसे उदाहरण भारतवर्ष के इतिहास में मिलेंगे कि जिस किसी ने नारी का अपमान करने का दुस्साहस किया है, उसका सर्वनाश ही हुआ है। क्षत्रिय युवक संघ ने नारी समाज के सम्मान के उदात्त चरित्र भी दिए हैं।

ईसा की सोलहवीं सदी में राजस्थान में मकराना से लेकर घाटवा तक मारोठ, घाटवा, भांवता, सरगोठ आदि छोटे पर शक्तिशाली गौड़ों के राज्य थे। वहाँ एक गौड़ राजा कौलराज एक तालाब खुदवा रहा था। उसका आदेश था कि इसके पास से जो भी गुजरे उससे तालाब में से खुदवा कर एक टोकरी मिट्टी बाहर डलवाई जाए। वहाँ से एक राजपूत युवक अपनी पत्नी को उसके पीहर मारवाड़ से लेकर आता हुआ वहाँ से निकला। गौड़ राजा के सैनिकों ने उस युवक से एक टोकरी मिट्टी बाहर डलवा दी। फिर उन लोगों ने उसकी पत्नी से भी एक टोकरी मिट्टी खोदकर बाहर डलवाने का दुराग्रह किया। युवक ने उसके बदले स्वयं मिट्टी डालने का कहा पर वे नहीं माने और रथ में बैठी युवती को हाथ पकड़ कर बाहर खींचने लगा। यह देखकर उस युवक ने उस दुराग्रही का सिर अपनी तलवार से काट दिया। अन्य सैनिकों ने मिलकर उस युवक पर हमला किया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। फिर उस युवती से जबरदस्ती एक टोकरी मिट्टी बाहर डलवाई। अकेली युवती क्या करती। जो मिट्टी उसने डाली उसमें से थोड़ी मिट्टी लेकर अपने ओढने में बांध ली। वहाँ से वह अमरसर में राव शेखाजी के पास पहुँची। उसने अपने अपमान की पूरी घटना कह सुनाई। उसने कहा-आपकी वीरता की कहानियाँ सुनकर मैं आपके पास आई हूँ कि आप मेरे इस अपमान का बदला लें। कौलराज का सिर काटकर अमरसर के द्वार पर चुनवा दें। राव शेखाजी ने प्रतिज्ञा की कि नारी जाति का अपमान करने वाले कौलराज का सिर काटकर तेरे चरणों में नहीं रखूंगा तब तक मैं भोजन ग्रहण नहीं करूँगा।

हालांकि वह राजपूत युवक व उसकी पत्नी दोनों ही राव शेखाजी के राज्य के निवासी नहीं थे, न अपमान करने वाले उनके राज्य के निवासी थे और न यह घटना अमरसर राज्य की सीमा में हुई थी, फिर भी नारी जाति के अपमान

का बदला, अपराधी को दण्ड देना क्षत्रिय का कर्तव्य है, इसलिए राव शेखाजी ने नारी जाति के अपमान का बदला लेने के लिये कौलराज का सिर काटकर अमरसर के दरवाजे में चुनवा दिया। इस पर सभी गौड़ संग्रहित हो गये। राव शेखाजी ने भी शक्तिशाली गौड़ों से ग्यारह वर्ष तक युद्ध करके गौड़ों की शक्ति को क्षीण किया।

मेवाड़ के महाराणा प्रताप को छोड़कर भारत के सभी राजा अकबर की सत्ता को स्वीकार चुके थे। उन्हें अकबर के दरबार में उपस्थित रहना पड़ता था। एक बार अकबर के दरबार में राजा, महाराजा, राव, उमराव सभी उपस्थित थे। अकबर ने बूंदी के राजा भोजदेव हाडा की ओर देखकर कहा,-'हाडा जी! हम चाहते हैं कि आपकी राजकुमारी का विवाह शाहजादा सलीम के साथ किया जाए' राजा भोज असमंजस में पड़ गए कि क्या उत्तर दिया जाए। जो 'हाँ' कहते हैं तो हाडा वंश को कलंक लग जाता है क्योंकि मेवाड़ के सिसोदिया कुल और बूंदी के हाडा राजपूतों ने मुसलमानों के साथ अपनी कन्याओं का विवाह नहीं किया था। वे निष्कलंक थे। जो 'ना' कहते हैं तो अकबर जैसे शक्तिशाली बादशाह के आगे बूंदी को बचाना मुश्किल है। राजा भोज ने दरबार में उपस्थित सभी राजाओं की तरफ अपनी दृष्टि घुमाई। किसी राजा से किसी उपाय की आशा नहीं दिख रही थी। लेकिन सभा में उपस्थित सिवाना के कल्ला रायमलोत पर जब नजर पड़ी तो उसने अपनी मूंछों पर बल दिया। राजा भोज ने यह देखा और बादशाह को कहा-'जहाँपनाह! उसकी तो सगाई हो चुकी है।' बादशाह ने पूछा-'किसके साथ सम्बन्ध हुआ है?' यह सुनते ही दरबार में बैठा कल्ला रायमलोत तुरन्त खड़ा हो गया और कहा,-'मेरे साथ'। बादशाह समझ गया कि यह केवल बहाना है लेकिन परिस्थिति को जानकर वह चुप ही रहा।

दूसरे ही दिन कल्ला बूंदी पहुँचा और राजा भोज की कन्या से पाणिग्रहण कर लिया। पाणिग्रहण के तुरन्त बाद ही कल्ला आगरा के लिए रवाना हो गया। पति-पत्नी में कोई ज्यादा बातचीत या स्नेह भरा कोई वार्तालाप नहीं हुआ। हाँ, आगरा के दीवाने खास की घटना से रानी को अवगत करा दिया। रानी समझ गई कि उसकी माँग में सिन्दूर कुछ ही दिनों तक का है। रानी ने अपने पति से प्रार्थना की कि- 'स्वामी यहाँ तो अकेली छोड़कर पधार रहे हैं, लेकिन स्वर्ग में तो अवश्य साथ ले जाना।' कल्ला केसरिया बाना पहने आगरा जा पहुँचा। बादशाह ने काबुल का उपद्रव दबाने के लिए कल्ला को लाहोर भेजा। काबुल का उपद्रव दबाकर कल्ला सिवाना जा रहा था। रास्ते में उसे खबर मिली कि बादशाह की सेना ने सिरोही पर आक्रमण किया है। सिरोही का राजा कल्ला का मामा था। कल्ला ने सिवाना न जाकर बादशाह की सेना पर आक्रमण किया और उसे हरा कर, लूट कर ही सिवाना गया। दरबार में घटित घटना से बादशाह की आँख तो कल्ला पर थी ही अत: बादशाह ने बड़ी सेना भेजकर मारवाड़ के मोटा राजा उदयसिंह से सिवाना पर आक्रमण करवाया। उदयसिंह की सेना ने सिवाना के किल्ले पर घेरा डाला। कल्ला किल्ले में ही था। उसने समझ लिया कि अब अन्तिम वीरता दिखाने की घड़ी आ गई है। उसे याद आया कि स्वर्ग में साथ जाने का जो वचन पत्नी को दिया था, उसे भी निभाना है। कल्ला की पत्नी तो बूंदी में थी। पाणिग्रहण के बाद तो वे एक दूसरे से मिल भी न पाए थे। कल्ला दुर्ग की रक्षा का भार अपने साथियों को सौंपकर चतुराई से घेरे के बाहर निकल गया। रात्रि के समय ही कल्ला बूंदी पहुँचा और कुछ हाडा सरदारों को साथ लेकर, अपनी पत्नी को लेकर सिवाना आ गया। अब शाही सेना और कल्ला के सैनिकों के बीच घमासान युद्ध हुआ। कल्ला ने बड़ी संख्या में शाही सैनिकों को मार डाला। भीषण लड़ाई में कल्ला का सिर कट गया तो अब उसका धड़ लड़ता रहा और बड़ी तादाद में मुगल सैनिकों को काट डाला। हाडी रानी ने अपने पति के सिर को गोद में रखा और चितारोहण कर, स्वर्ग पहुँचकर वचन को निभाया।

अकबर के दरबार में बादशाह की माँग के विरुद्ध यह कहना कि बूंद की राजकुमारी की सगाई मेरे साथ हो चुकी है, इसका परिणाम जानते हुए भी कल्ला ने बूंदी के हाडाओं को कलंक से बचाने के लिये, राजकुमारी का मान बनाए रखने के लिए अपना बलिदान दे दिया।

दिल्ली के शक्तिशाली और क्रूर सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ के राव रतनसिंह जी की अप्सरा जैसी अतिसुन्दर रानी को पाने के लिए चित्तौड़ दुर्ग पर हमला किया और लम्बे समय तक दुर्ग को घेरे रखा। जब वह उसमें सफल नहीं हुआ तो मैत्री का संदेश भेजकर विश्वासघात से राव रतनसिंह को कैद कर लिया और कहा कि यदि रानी पद्मिनी उसे मिल जाए तो वह राव जी को मुक्त कर देगा और रानी पद्मिनी को लेकर चला जाएगा। इस पर मेवाड़ के राजपूत वीरों ने मेवाड़ की आन और रानी पद्मिनी की शान बचाने के लिये केशरिया किया और हजारों की संख्या में खिलजी के सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। वे स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए लेकिन मेवाड़ व रानी की शान बनाए रखी। इतना ही नहीं बल्कि मेवाड़ की आन व शान बनाए रखने के लिये, राजपूत कुल के सम्मान की रक्षा के लिये महारानी पद्मिनी के संग सौलह हजार राजपूत ललनाओं ने धधकती आग के अग्नि कुण्ड में कूदकर जौहर किया और अलाउद्दीन की मुराद को पूरा नहीं होने दिया।

उपरोक्त उदाहरण तो क्षत्राणियों के सम्मान की रक्षा के हैं लेकिन राजपूतों ने विधर्मी व दुश्मन दल की नारियों के सम्मान के भी उत्तम चरित्र प्रस्तुत किए हैं।

मुगल बादशाह अकबर का काबुल-कन्धार से लेकर दक्षिण के कुछ राज्यों को छोड़कर करीब पूरे भारत पर अधिकार हो गया था। मेवाड़ भूमि पर भी अकबर का अधिकार हो चुका था। दूसरे राजाओं ने अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली थी परन्तु महाराणा प्रताप ही अकेले ऐसे राजा थे जिन्होंने अकबर की आधीनता स्वीकार नहीं की थी और मेवाड़ को मुक्त करवाने के लिये अकबर से संघर्ष कर रहे थे। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद महाराणा प्रताप चावण्ड को अपनी राजधानी बनाकर पहाड़ियों और जंगलों में से ही मुगल सैन्य से छापामार युद्ध करते रहे थे। उन्हें जैसे ही खबर मिलती कि इस जगह मुगल सेना का पड़ाव है, या इस जगह से मुगल सेना गुजर रही है तो महाराणा जंगल और पहाड़ियों में से अचानक मुगल सेना पर टूट पड़ते और बड़ी संख्या में मुगल सेना का संहार करके बचे हुए सैनिकों को भगाकर उस क्षेत्र पर अधिकार कर लेते।

एक बार राजकुमार अमरसिंह को खबर मिली कि बादशाह अकबर का सिपहसालार अब्दुर्रहीम खानखाना शेरपुर में सेना के साथ पड़ाव डाले हुए है। राजकुमार अमरसिंह ने उनके पड़ाव क्षेत्र पर हमला कर दिया और वहाँ उपस्थित सैनिकों को मारकर और भगाकर पड़ाव में उपस्थित बेगमों को कैद कर ले आया। राजकुमार ने शायद सोचा था कि महाराणा इन बेगमों के बदले मेवाड़ से मुगल सेना को हटा लेने का दबाव बनाएँगे। लेकिन महाराणा प्रताप अमरसिंह के इस कृत्य से क्रोधित हो गए और अमरसिंह को फटकार सुनाई-'अमरसिंह क्षत्रिय परम्परा यह नहीं सिखाती कि दुश्मन की स्त्रियों को भी कैद किया जाए। क्षत्रियों ने सदा नारी जाति का सम्मान किया है, उनकी आन, बान और मर्यादा का रक्षण किया है। नारी चाहे अपने कुल की हो या अन्य कुल की, नारी सदा सम्माननीय रही है। हर नारी हमारी माताओं, बहनों और पुत्रियों के समान सम्माननीय है फिर भले वह दुश्मन की ही क्यों न हो। हमारी दुश्मनी मुगलों से है, उनकी स्त्रियों से नहीं।' महाराणा ने उन स्त्रियों को सम्मान सहित उनके शिविर में पहुँचाने के लिये राजकुमार अमरसिंह को स्वयं को जाने का आदेश दिया। अमरसिंह ने स्वयं ने जाकर मुगल स्त्रियों को सम्मान सहित सुरक्षित उनके शिविर में पहुँचाया।

मुसलमान शासक या आक्रमणकारी जिस किसी राज्य या देश पर युद्ध में विजयी होते तो लूटमार करते और पराजित राज्य की स्त्रियों का अपहरण करते और उनको कलंकित करते। इस अपमान से बचने के लिये ही तो राजपूत स्त्रियाँ जौहर करती थी। इसके विपरीत महाराणा प्रताप और राजपूतों का नारी के प्रति उदात्त चरित्र था।

महाराजा जसवंतसिंह जी की काबुल में मृत्यु के पश्चात औरंगजेब ने जोधपुर पर कब्जा कर लिया। महाराजा जसवंतसिंहजी के नाबालिग पुत्र अजीतसिंह को जोधपुर-मारवाड़ का राज्य वापस दिलाने के लिये वीरवर

दुर्गादास राठौड़ संघर्ष कर रहे थे। सामने क्रूर और कुटिल बादशाह औरंगजेब था लेकिन दुर्गादास भी कुशाग्र बुद्धि वाले थे। उन्होंने कूटनीति से औरंगजेब के शहजादे अकबर (द्वितीय) को अपने पक्ष में कर लिया। औरंगजेब ने जाली पत्र के माध्यम से अकबर की सेना को भ्रमित कर उससे अलग कर दिया तब बादशाह से डरकर देश छोड़कर ईरान चला गया लेकिन अपनी पुत्री व पुत्र को दुर्गादास के संरक्षण में छोड़ गया। उसे अपने पिता औरंगजेब पर भरोसा नहीं था, पर दुर्गादास पर था। दुर्गादासजी ने अकबर की दोनों संतानों को संरक्षण दिया तथा अपनी संतान का सा स्नेह देकर पाला। उनको इस्लाम धर्म की शिक्षा की भी व्यवस्था की। जब दोनों युवा हो गए तो औरंगजेब ने उनकी रक्षा का वचन देकर अपने पास बुला लिया।

जब औरंगजेब ने उन दोनों के लिए कुरान और इस्लाम धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहा तो दोनों ने कहा,-दुर्गाबाबा ने हमें कुरान और इस्लाम धर्म की शिक्षा दिलवा दी है।' औरंगजेब आश्चर्य करने लगा कि एक विधर्मी और दुश्मन ने कैसा उदात्त चरित्र दिखलाया है। जब औरंगजेब ने अपनी पौत्री से पूछा कि क्या तूने दुर्गादास को देखा है? तो उत्तर मिला-नहीं। मैंने उन्हें कभी नहीं देखा, परदे की ओट से केवल आवाज सुनी और आवाज से ही पहचान जाती थी। औरंगजेब राजपूत चरित्र को मन ही मन नमन कर उठा।

दक्षिण भारत में छत्रपति शिवाजी जो मेवाड़ के गहलोत कुल के थे, मुगल बादशाह औरंगजेब उन्हें भी नेस्तनाबूद कर हिन्दुओं को मुसलमान बनाना चाहता था। जहाँ-जहाँ वह विजयी होता था, वहाँ के हिन्दु मंदिरों को नष्ट करता था तथा हिन्दुओं को जबरदस्ती इस्लाम कबूल करवाता था। औरंगजेब दुर्गादास राठौड़ की तरह ही शिवाजी को भी अपना कट्टर दुश्मन मानता था। उसने मराठों को दबाने के लिये दक्षिण में भी बड़ी सेना भेज रखी थी। महाराणा प्रताप की तरह शिवाजी भी जंगलों व पहाड़ियों में छिपकर मुगल सेना पर छापामार युद्ध किया करते थे। एक बार शिवाजी के एक सेनापति ने मुगल सेना पर ऐसा ही आक्रमण किया। मुगल सेना मरती-कटती भाग खड़ी हुई। परन्तु उनकी औरतें शिवाजी के सैनिकों के हाथ लग गईं। उनमें मुगल सेनापति की बेगम भी थी जो अति खूबसूरत थी। मराठा सेना औरतों को शिवाजी के पास ले गई। औरतों को कैद करने के लिए अपने सैनिकों को डाटा और कहा कि हमारी शत्रुता मुगलों से है न कि उनकी औरतों से। ये तो हमारी माताओं-बहनों की तरह सम्मानीय हैं। शिवाजी ने सेनापति की बेगम को कहा-काश! आप मेरी माता होती, तो मैं भी कितना रूपवान होता। शिवाजी ने उन्हें ससम्मान वापस मुगल सेना तक पहुँचाया।

राजपूतों ने नारी सम्मान के अनेकों चरित्र संसार को दिए हैं लेकिन इस लेख में इतिहास प्रसिद्ध कुछ चरित्रों का ही वर्णन किया गया है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की सोच रही है कि हमारी युवा पीढी इतिहास की पुस्तकें बहुत कम पढती हैं पर 'संघशक्ति' पत्रिका के माध्यम से कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी वे प्राप्त कर सकते हैं।

❑

पृष्ठ 16 का शेष

पृथ्वीराज चौहान (तृतीय)

ऐसी स्थिति में जब रासो वंशावलियों और ऐतिहासिक व्यक्तित्वों का सटीक चित्रण नहीं कर पाता तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये।

1650 ई. से पूर्व अन्य किसी ग्रन्थ में रासो का उद्धरण न होना इस अनुमान का भी खंडन कर देता है, कि पृथ्वीराज के कुछ समय बाद से लेकर 1590 ई. तक रासो का केवल मौखिक प्रसार ही होता रहा। विशेषकर जब रासो की विषयवस्तु पृथ्वीराज चौहान का व्यक्तित्व हो और 300 वर्षों से अधिक का ये काल तुर्क आधिपत्य का, ऐसा सम्भव ही नहीं कि रासो जैसी रचना उस काल में हो और फिर भी पूरे तत्कालीन साहित्य पटल पर 400 वर्षों तक कहीं उसके उद्धरण का कोई संकेत तक न मिले।

(क्रमशः)

विचार-सरिता

(अष्ट षष्टिः लहरी)

– विचारक

हमारा मन कुछ न कुछ करके प्राप्त करने में विश्वास करता आया है। हम सबकी यह धारणा इतनी गहरी हो गई है कि बिना किए आज तक किसी को कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ, अत: हम कर्ता बनकर कर्तव्य कर्म करने में विश्वास करते हैं। परमात्म-प्राप्ति को भी हमने जगत के पदार्थों के समकक्ष समझ रखा है। स्थूल दृष्टान्त में हम देखते हैं कि जिसको मकान का अभाव है और मकान की प्राप्ति करना चाहता है वह अपने पुरुषार्थ से मकान बनाने की सामग्री संग्रहित करता है, फिर उस सामग्री को सांचों में तरास कर मकान की आकृति देता है। जिसमें पहले नींव भरता है, फिर दीवारें उठाता है, फिर छत डाल कर उसकी निपाई-पुताई करता है, तब जाकर सर्दी, गर्मी, धूप व बारिश से बचने का साधन उपलब्ध हुआ। इतना सब कुछ इसलिए करना पड़ा क्योंकि मकान पहले था नहीं।

परन्तु जिस परमात्म-प्राप्ति की हम बात कर रहे हैं, उसका अभाव तो कभी हुआ ही नहीं, हो सकता ही नहीं। जो नित प्राप्त है, उसके लिए क्रिया द्वारा हम प्राप्ति चाहते हैं, यह महान भूल है। यह तो वैसी ही बात है कि किसी धनवान पुरुष ने बहुत सारा धन अपने घर में गाड़ तो दिया परन्तु उस स्थान की विस्मृति हो गई, जहाँ धन गाड़ रखा है। अब वह धन की खोज में घर के बाहर खुदाई कर रहा है। ऐसे विपरीत पुरुषार्थ से वह अन्त में निराश ही होगा और जीवनभर दरिद्रि ही बना रहेगा।

अत: अप्राप्त वस्तु की तो प्राप्ति के लिए कर्तव्य का महत्त्व है, परन्तु प्राप्त वस्तु के लिए कर्तव्य नहीं स्मृति (याद करना) की जरूरत है। गीता में आया है ''स्मृति लब्धा ज्ञानम्''। अर्थात् ज्ञान के द्वारा हृदय में विराजित उस परमेश्वर की स्मृति हो जाना ही प्राप्त की प्राप्ति है। परमात्म-प्राप्ति में कर्तव्य को महत्त्व देना अज्ञान का सूचक है। अज्ञानी अपने को जीव मानकर दीन-हीन और अपने को परमात्मा से बिछुड़ा हुआ मान रहा है। इसीलिए तो पूजा-पाठ, ध्यान-धारणा, उपासना आदि करके परमात्मा को रिझाने का उपक्रम करता है। अज्ञानी चाहता है कि मैं उपासनादि क्रिया करके परमात्मा को पा लूंगा तथा ऐसा करके ज्ञानी, ध्यानी बनूंगा और ब्रह्मरूप हो जाऊँगा। अपने आप में यह जीव भाव ही उसको जन्म-जन्मान्तरों तक भटकाता आया है, और जब तक अपने आपको ब्रह्मात्मैक्य बोध से पूर्ण स्थिति को नहीं उपलब्ध होगा तब तक उसे आवागमन से मुक्ति नहीं मिल सकती।

जिसके हृदय में ज्ञान का उजियारा हो जाता है, उसके हृदय का अज्ञान रूपी अंधकार पक्का नष्ट हो जाता है यानी अवश्यमेव ही पूर्णतया नष्ट हो जाता है। आत्मा से भिन्न सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद वाली कोई भी वस्तु नहीं होने के कारण आत्मा सदा असंग है। ज्ञानी की दृष्टि में आत्मा का न कभी ह्रास होता है और न वृद्धि ही कही जा सकती है। आत्मा सदा एक रस है। आत्मा से अतिरिक्त न भूतकाल में कुछ हुआ, न वर्तमान में है और न भविष्य में कुछ होना है। आत्मा के अलावा न भूतकाल है, न वर्तमानकाल है और न भविष्यकाल है। ज्ञानी की दृष्टि में काल की गणना अज्ञानी के मनोविकार का परिणाममात्र है। यह जो जगत प्रतीत हो रहा है, अविद्या के परिणामस्वरूप असत् में सत् बुद्धि अनित्य में नित्य बुद्धि दु:खविषै सुख बुद्धि और अशुचि में शुचि बुद्धि है। यह सब मन का ही विलास है।

ब्रह्म के अतिरिक्त अलग से जगत का कोई अस्तित्व या होना कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता अर्थात् जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं उसे क्या छोड़ना और क्या पकड़ना। ज्ञानी तो जानता है कि मेरे से भिन्न कुछ भी नहीं है। ऊपर से शरीर दृष्टि से यानी व्यवहार दृष्टि से ज्ञानी देखता है, सुनता है, बोलता है और प्रारब्धाधीन देह-व्यापार करता हुआ दिखता है पर वह करता हुआ भी

अकर्ता है। क्योंकि स्वरूप दृष्टि से जिस स्वरूप में ज्ञानी की स्थिति है, उस स्वरूप में न देखना बनता है, न सुनना और बोलना बनता है। सब रसों को ग्रहण करता हुआ भी स्वाद से रहित है ज्ञानी की स्थिति। जीभ से ज्ञान तो वैसा ही होता है जैसा अन्यों को होता है अर्थात् इन्द्रजन्य व्यवहार तो इन्द्रियों का स्वभाव है पर ज्ञानी की वृति अपने स्वरूप में होने से उस व्यवहार से वह सदैव उदासीन ही रहता है।

काल्पनिक इस देह के निर्वाहार्थ अथवा प्रारब्ध फल भोग हेतु विषयों को भोगता हुआ भी वह वास्तव में अभोक्ता ही है। इसी का नाम संन्यास है, क्योंकि जिसे अपने सत् स्वरूप का दृढ़ता से ब्रह्माभिन्न बोध हो गया है, अनुभव हो गया है। ऐसा वीतरागी महापुरुष चाहे घर में रहे, चाहे वन में, श्वेत वस्त्रों में रहे, चाहे गेरुएँ वस्त्रों में, बढ़िया वस्त्रों से विभूषित रहे चाहे दिगम्बर रहे, वह पूर्ण संन्यासी है, त्यागी है। कामना और वासना जिसकी शान्त हो गई है वह संसार में रहते हुए भी संसार के धर्मों से रहित है। जिस प्रकार कमल सरोवर में ही खिलता है परन्तु जल से सदैव ऊपर उठा रहता है, ऐसे ही ज्ञानीजन संसार में ही रहते हैं परन्तु उनके भीतर में संसार का पूर्णत: अभाव है। ऐसे स्वरूप में जगे हुए जीवनमुक्त महापुरुष का सान्निध्य लाभ यदि कोई जिज्ञासु लेता है तो उस महापुरुष की कृपा से वह साधक भी धनधन्य होकर कृतार्थ हो जाता है। ऐसे अलमस्त फकीरों की उस बादशाही को मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।

ओम् तत् सत्! ओम् तत् सत्!! ओम् तत् सत्!!!

पृष्ठ 18 का शेष

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

परिस्थिति का सामना किया था। यह घटना स्वामीजी की प्रथम इंग्लैण्ड-यात्रा के दौरान घटी थी। एक बार जब वे अपनी एक अंग्रेजी मित्र तथा मिस मूलर के साथ टहलते हुए एक खेत से होकर गुजर रहे थे, तो एक क्रुद्ध साँड़ बड़ी उग्रतापूर्वक उन लोगों की ओर आया। अंग्रेज सज्जन दौड़कर पहाड़ी के दूसरी ओर के सुरक्षित स्थान पर पहुँच गए। मिस मूलर यथाशक्ति दौड़ीं और फिर आगे बढ़ने में असमर्थ हो जमीन पर गिर पड़ीं। स्वामीजी ने यह सब देखा और साँड़ से उन्हें बचाने का और कोई उपाय न देख, हाथ बाँधे उनके सामने तनकर खड़े हो गए और सोचने लगे, 'तो, अन्तिम समय आ ही पहुँचा!' बाद में उन्होंने बताया था कि उस समय उनका मन यही हिसाब करने में लगा हुआ था कि साँड़ उन्हें कितनी दूर फेंकेगा। परन्तु वह जानवर कुछ कदम पूर्व ही सहसा-ठहर गया और वापस लौट गया।

ऐसा ही साहस स्वामीजी ने अपनी किशोरावस्था में भी दिखाया था, जब उन्होंने कोलकाता की गलियों में अनियंत्रित दौड़ते हुए एक घोड़े को सहज भाव से आगे बढ़कर पकड़ लिया था और इस प्रकार उसके साथ जुड़ी बग्घी में बैठी एक महिला की प्राणरक्षा की थी। स्वामीजी ने कहा था, 'जब कभी संकट आता है, यहाँ तक कि मृत्यु की सम्भावना होने पर भी, मेरा मन शान्त, स्थिर और निर्भय रहता है।'

अपनी मनोदशा बताते हुए एक बार उन्होंने कहा था, 'जिसने ईश्वर के चरण छू लिए हैं, उसके लिये कुछ भी भयप्रद नहीं होता।' यहाँ महाराष्ट्र के सन्त स्वामी रामदास की इस उक्ति का उल्लेख किया जा सकता है- 'महापुरुष वे हैं जो स्वयं निर्भय हैं और दूसरों में भी भय का संचार नहीं करते।'

महापुरुषों से हमारा तात्पर्य उन लोगों से है, जिन्होंने सर्व-शक्तिमान ईश्वर या सर्वव्यापी आत्मा की अनुभूति कर ली है। इस अनुभूति के दो फल हैं- मनोबल तथा निर्भयता। सच्चे भगवद्भक्त तथा ज्ञानी लोग निर्भय होते हैं। यहाँ तक कि उनके सान्निध्य में आने पर पशु-पक्षी भी निर्भयता के भाव का अनुभव करते हैं। यदि हम श्रद्धा तथा दृढ़तापूर्वक उनकी शिक्षाओं का अनुसरण करें, तो हम भी निर्भय हो सकते हैं।

(क्रमश:)

एक प्रेरक सत्य घटना

– अजीतसिंह धोलेरा

स्वर्गस्थ हेमुदान गढवी (चारण) राजकोट रेडियो स्टेशन के प्राण थे। लोक साहित्य के प्रखर ज्ञाता थे व लोकगीत के वे सुविख्यात गायक थे। उनके जीवन की एक घटना है। एक गरीब विधवा महिला का एकलौता तीन साल का लड़का मामा के घर जाने के लिये जिद कर रहा था और उस महिला का कोई सगा भाई था ही नहीं। माँ ने बेटे को बहुत समझाने का प्रयत्न किया, मगर लड़का माने ही नहीं। इतने में रेडियो से हेमुदान जी का गीत सुनाई पड़ा। माँ ने बेटे को मनाने के लिए कहा-''बेटा! यह तेरे मामा गा रहे हैं। कितना अच्छा गाते हैं।''

बच्चे को गीत से कोई लेना-देना नहीं था। वह तो 'मामा' शब्द सुनते ही उछल पड़ा और बोला-''माँ! तो चलो न हम मामा के घर जाएँ।''

माँ ने कहा-''बेटा! मामा का घर बहुत दूर है। वहाँ जाने के लिए बस नहीं है। मैं मामा को कहूंगी कि वे मिलने के लिए यहाँ आएँ। फिर हम जाएँगे। मामा का नाम तो याद है न?''

''हाँ माँ! हेमुदान गढवी। और हम भी गढवी ही हैं ना।''

''हाँ बेटा! इसीलिए तो वे तेरे मामा लगते हैं।''

फिर लड़के ने मामा को बुलाने की हठ पकड़ी। रेडियो बोला-'आकाशवाणी राजकोट। लोक साहित्यकार हेमुदान गढवी के भजन का कार्यक्रम पूरा हुआ।'

महिला ने आकाशवाणी के राजकोट रेडियो स्टेशन के पते पर हेमुदान जी को पत्र लिखा।

'हेमुभाई! मेरी और आपकी आँख की भी पहचान नहीं है। मैं एक चारण महिला हूँ। मेरा एकलौता बेटा मामा के घर जाने का हठ लेकर मुझे परेशान कर रहा है। मेरे भाई नहीं है। मायके में मेरा कोई नहीं है। कल आपको रेडियो में सुना और बेटे को कहा,-देख ये तेरे मामा गा रहे हैं।

'मेरा यह पत्र आपको मिले और आपको जचे तो मेरे बेटे का मामा बनकर एक दिन जरूर पधारो। वरना इस पत्र को फाड़कर फेंक देना।-आपकी दुखियारी बहन।'

पत्र राजकोट रेडियो स्टेशन पहुँचा। हेमुदानजी को दिया गया। टेढे-मेढे अक्षर, टेढी लकीरें, बार-बार की कटाई, बेढंगी लिखावट। बहुत मेहनत से पत्र पढा। पत्र का मर्म समझ में आ गया। आँखें गीली हो गई। मनोमन बोले-'अरे हिवड़ा! कलाकार जिस तत्त्व को पाने के लिए धरती-नभ को एक करते हैं और अपनी कला के कवन-कथन में इसीलिए प्राण पूरते हैं वह तत्त्व आज मेरे सौभाग्य से सामने से मुझे निमंत्रित कर रहा है। बहुत धन्यवाद मेरी प्यारी बहन! एक बार नहीं सात बार मैं तेरा भाई।'

एक बार जूनागढ़ का कार्यक्रम सम्पन्न करके अपने साथियों के साथ कार से हेमुदान जी राजकोट जा रहे थे। बहन का गाँव राह में आया। गाड़ी रोक ली। आधी रात को दरवाजा खटखटाया। भाणजे को गले लगाया। बहन को प्रणाम किया और कार्यक्रम में मिले पाँच हजार रुपए (यह घटना सन् 1961 की है। उस समय के पाँच हजार, आज के?) भाणजे के हाथ में थमा दिये।

बिना बोले राजकोट के पास पहुँचे चाय के लिए एक होटल पर रुके। अपने साथियों को सारी बात सुनाई और बोले-''अभी मेरे पास आप लोगों को आपके हिस्से के पैसे देने के लिए कुछ नहीं है। सुबह हुई है, शाम को आपको आपके हिस्से की रकम भेज दूंगा। और हाँ, चाय के पैसे भी आप ही दे दो।''

पूरी बात सुनकर साथियों ने कहा,-''आपकी बहन हमारी भी बहन है। हमें एक भी पैसा नहीं चाहिए। अब पैसे की बात की तो इस धरती माता की सौगन्ध है।''

फिर हेमुदानजी ने कहा-''वो तो ठीक पर चाय के पैसे तो आपको ही देना है।''

पूरी बात गौर से सुन रहे चाय वाले ने उस शुभ अवसर का पूरा लाभ उठाया और सोचा 'इतने बड़े कलाकार की दातारी व उदारता की बह रही गंगा में मैं भी एक डुबकी लगा लूँ।'

वह बोला-''खबरदार! यदि पैसे की बात करी तो। आप तो धरती माता के सपूत हैं। माता की आन की रखवाली करने वाले हैं। और मैं यदि आपसे चाय का पैसा लूं तो मेरी माता का दूध लजेगा।''

न तो कलाकारों ने पैसा लिया न चाय वाले ने। काठियावाड़ की धरती को ऐसे दिव्यात्माओं ने एक बार पुन: मधुमती बना डाली।

गतांक से आगे

इतिहास के झरोखे में गोगा चौहान

– मातुसिंह मानपुरा

तथाकथित जोड़ों (अर्जन-सर्जन) से सम्बन्ध एवं संघर्ष :– लोककथाओं में अर्जन-सर्जन को गोगा के मोसेरे भाई बताया जाता है। इस कहानी को आधार मानकर कुछ इतिहासकारों ने भ्रमित तथ्य प्रस्तुत किये हैं। सही तथ्य तो यह है कि अर्जन-सर्जन पिता-पुत्र थे और घंघरान के वंश में ही थे। राणा घंघरान की दूसरी रानी के तीन पुत्र हुये थे। कवि जान (नियामतखां) द्वारा रचित 'क्यामखां रासा' के अनुसार-

तीन जंने सुत अप्छरा, कन्ह, चंद पुनि इंद।
ऐक-ऐक ते सरस हैं, तीनों भये नरिंद।।

इतिहासकार श्री गोविन्द अग्रवाल ने अपने शोधग्रंथ में लिखा है कि 'घंघ की मृत्यु के बाद उसकी दूसरी रानी का बड़ा पुत्र कन्ह पिता की गद्दी पर बैठा और चन्द और इंद ने अपने अलग ठिकाने बाँधे।' ऐसा 'क्यामखां रासा' से प्रमाणित भी है -

अंत कालही कान्हपै, आई छुड़ाइ ठौर।
तब राजा अमरा भयौ, चाहुवांन सिरमौर।। (106)
अमरा अजरा सिधरा, पुनि बछरा ये चार।
कान्हरदे के पुत्र हैं, प्रगट भये संसार।। (107)
अमरा सुत जेवर भयो, राज कर्‌यो जगमांहि।
अंत मर्‌यो या जगत मं, अमर अजर को नांहि।।(109)
ताके गूगा बैरसी, सेस धरह ये चार।
राज कर्‌यो केतक बरस, अंत तज्यौ संसार।। (110)

'क्यामखां रासा' में लिखित दोहे इस वंश की पीढी को प्रमाणित करते हैं-घंघरान-कन्ह-अमरा-जेवर-गोगा। चांपसी समौर जो मोहिलों के राजकवि थे, इन्होंने भी दोहे शैली के रूप में मोहिलों की वंशावली दी है-

चाह हुवै चौहान रै, प्रथमी गढ जसपूर।
चक्रवत उदियो चाह रै, समवड़ मघवण सूर।।
मुंहि पुड भींच प्रवाड़ मल, भुबळ आपणै भाव।
सिंघ हुयो घणसूर रै, रूपक बंस इन्दराव।।
पात बड़ा सारी प्रथी, जपै सदा जस जीह।
रढरावण इन्दराव रै, उदियो अजण अबीह।।
पूरबली पण पाळवा, तुड़ ताणंग गहवंत।
अजण तणो बंस ओपियो, सजण सुवो सामंत।।
सुबह किया खेड़ा सकल, चक्रवत चवदह चाळ।
तपियो मोहिल महिपती, सजण तणो सींगाळ।।

मोहिल भी घांघू के राणा घंघरान के वंश से निकले हैं-घंघरान-इंदराव-अर्जन-सर्जन-मोहिल..। घंघरान से गोगा पांचवीं पीढी में हैं। घंघरान से अर्जन तीसरी व सर्जन चौथी पीढी में है, अर्थात् अर्जन-सर्जन भाई न होकर पिता-पुत्र थे। वंश परम्परा के अनुसार सर्जन गोगा का चाचा था लेकिन दोनों की उम्र लगभग समान थी। लोककथाओं को संशोधित कर आधार मानें तो सर्जन (अर्जनोत) की माँ आछल एवं गोगा की माँ बाछल क्रमश: बड़ी-छोटी बहिन थी तथा इनका मायका सहारनपुर (उ.प्र.) में था, जहाँ खरसावा गाँव में बाछल का मन्दिर भी बताया जाता है। बाल्यावस्था में साथ रहने के कारण छुटपुट टकराव स्वाभाविक था लेकिन बाछल द्वारा इन्हें समझा दिया जाता था। सम्भवत: राणा जेवर की मृत्यु के पश्चात् शासन-व्यवस्था में गोगा की माँ बाछल का सहयोग आवश्यकतानुसार रहा। युवावस्था तक सर्जन का ददरेवा में आना-जाना अधिक रहा था इसलिए उदार हृदय माँ बाछल सर्जन से भी अपने पुत्र गोगा के समान स्नेह रखती थी लेकिन सर्जन उद्दण्ड एवं विश्वासघाती निकला। श्रीगोविन्द अग्रवाल ने अपनी पुस्तक में 'शोध पत्रिका' वर्ष-20, अंक-2 का उल्लेख करते हुए लिखा है कि डॉ. दशरथ शर्मा ने घंघ के बेटे इन्द के पुत्र अर्जन और पौत्र सर्जन का गोगाजी से युद्ध होने का अनुमान किया है, 'अब वंशावलियों आदि का साक्ष्य भी हमें यह मानने के लिये विवश कर रहा है कि अर्जन और सर्जन गोगा के समान ऐतिहासिक पुरुष थे। आयु और वंशानुक्रम में गोगा

से बड़े होने के कारण गोगा के पिता जेवर की मृत्यु होने पर उन्होंने शायद ददरेवा पर अधिकार करने का प्रयत्न किया हो।'

घंघरान के पुत्र इंद के वंशजों के ठिकाने के सम्बन्ध में कई तर्क प्राप्त होते हैं। 'क्यामखां रासा' में इंद की राजधानी इंदोर बताया है, यह कवि स्वभाव के कारण तथ्य को भूलकर तुकबंदी की है जो पूर्णतया मिथ्या है। 'चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास' में पृष्ठ सं. 53 पर लिखा है, ऐसी प्रसिद्धि है कि गोगाजी ने अपने मौसेरे भाई अर्जन-सर्जन को (जिन्हें एक साथ जन्म लेने के कारण जोड़ा कहा जाता है) युद्ध में मारा था। जोड़ों का ठिकाना गाँव जोड़ी को बताया जाता है।' यह तथ्य लोककथाओं पर आधारित है जो युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि जोड़ी घांघू से उत्तर-पश्चिम तथा ददरेवा से दक्षिण-पश्चिम में लगभग समान दूरी पर स्थित है। यह क्षेत्र इन दोनों राज्यों के इतना निकट है कि यहाँ शक्तिसम्पन्न स्वतंत्र राज्य स्थापित नहीं किया जा सकता, इसलिए यह तथ्य काल्पनिक एवं अपूर्ण है। अर्जन-सर्जन की राजधानी एवं क्षेत्र के सम्बन्ध में हमें मोहिलों के इतिहास का अध्ययन करना होगा। मोहिलों के इतिहास के सम्बन्ध में चांपसी और सामौर एवं नैणसी द्वारा दिये गये तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन नैणसी ने इंद के पौत्र सर्जन को श्रीमोर का शासक कहा है तथा सर्जन के पुत्र मोहिल को छापर में पाट बैठना लिखा है, ये दोनों ही तथ्य आपस में व अन्य तथ्यों से मेल नहीं खाते हैं अर्जन-सर्जन, जोड़े, जोड़ी आदि भ्रमित तथ्य प्रस्तुत करने के उपरान्त भी मोहिलों के सम्बन्ध में व उनकी राज्य सीमा का निर्धारण करने हेतु श्री गोविन्द अग्रवाल का दिशानिर्देश महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है, 'यद्यपि नैणसी ने चौहान मोहिल का छापर में पाट बैठना लिखा है लेकिन सम्भवत: छापर की अपेक्षा छापर से 14 मिल दक्षिण-पश्चिम 'चरलू' मोहिलों का प्रथम ठिकाना बना और बाद में किसी समय छापर को राजधानी बनाया गया। मोहिलों के सबसे पुराने अभिलेख चरलू और उसके समीप ही मिले हैं।' 'लाडनू: एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण' के लेखक श्री भंवर लाल जांगिड़ ने लिखा है, 'मोहिलों के सत्ता केन्द्र के रूप में नैणसी ने छापर और द्रोणपुर को प्रमुखता दी है, जबकि श्री ओझाजी ने चरला गाँव की देवलियों को अधिक प्राचीन माना है तथा उनके आधार पर मोहिलों के प्रारम्भिक सत्ता केन्द्र के रूप में उस गाँव को प्राथमिकता दी है।' इन सभी तथ्यों से प्रमाणित होता है कि इंद एवं अर्जन-सर्जनके समय चरलू के आसपास का क्षेत्र ही उनके अधिकार में था।

अर्जन ने अपने पुत्र सर्जन की भावना तथा गोगा के पिता जेवर की मृत्यु के उपरान्त की स्थिति का लाभ उठाने हेतु ददरेवा पर आक्रमण किया। लोककथाओं की आंशिक सत्यता को भी यदि हम प्रयोग में लें तो यह मानना उचित है कि अर्जन-सर्जन को ददरेवा राज्य की संपूर्ण जानकारी थी तथा गोगा से युद्ध करने हेतु कुटिल नीति का भी सहारा लिया। ददरेवा से छापर-द्रोणपुर का क्षेत्र पश्चिम-दक्षिण दिशा में है और खुड़ी गाँव के पास स्थित युद्ध मैदान ददरेवा से उत्तर-पूर्व दिशा में है अर्थात् ठीक विपरीत दिशा में। गोगा को अर्जन-सर्जन पर संदेह था इसलिए अपने राज्य की दक्षिण-पश्चिम दिशा में थाने स्थापित कर सुरक्षित कर रखा था। अर्जन-सर्जन ने ददरेवा की उत्तर-पूर्व दिशा से आक्रमण किया, गोगा के तैयार होने तक वो पिता-पुत्र ददरेवा के निकट पहुँच गये। ददरेवा से 5 कि.मी. दूर खुड़ी गाँव के पास जोहड़ मैदान में दोनों सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ जिसमें अर्जन-सर्जन (पिता-पुत्र) मारे गये और उनकी सेना में भगदड़ मच गयी, गोगा की विजय हुयी। एक लोकगीत की पंक्ति इस बात की साक्षी है-'अर्जुन मार्‌यो जाळ तळै, सर्जन सरवरिये री पाळ, हे री म्हारा गूगा भल्यो रहियो'। युद्ध मैदान के अवलोकन के समय एक बुजुर्ग ग्वाले ने बताया कि 'वर्तमान में अर्जन-सर्जन के अन्तिम संस्कार का जो यह स्थल है, यहाँ जाल (जाळ) का एक बड़ा वृक्ष था, जो अभी 5-7 वर्ष पहले ही गिरा है'। पास में ही तालाब है जिसमें पशुओं के पीने लायक पानी ठहरा हुआ था, इसकी पाळ (पानी के चारों तरफ मिट्टी की बनाई दीवार) के पास

सर्जन मारा गया। अन्तिम संस्कार स्थल एक ही जगह है, जहाँ पर अब पत्थर की शिला पर घोड़े चढे दो योद्धाओं के चित्र उकेरे हुये हैं। ग्रामवासियों ने बताया कि हमारे यहाँ भोमियां के रूप में अर्जन-सर्जन की पूजा होती है, भार्गव परिवार इसका पुजारी है। उसी स्थान पर थोड़ा हटकर गोगा चौहान की भी मूर्ति लगी हुई है। अर्जन-सर्जन की मूर्ति पर कुछ लिखा हुआ है जो अस्पष्ट है। लेख एवं मूर्ति (एक पत्थर पर ही हैं) बहुत समय बाद तैयार किये हुये लगते हैं। इतिहास में रुचि रखने वाले एक विद्वान मित्र ने इस लेख के सम्बन्ध में बताया कि इस पर 'सावण सुदि 11 वि.सं. 1031 लिखा हुआ है'। प्रथम तो यह लेख स्पष्ट नहीं है और न ही यह तिथि युक्तिसंगत प्रतीत होती है क्योंकि इस युद्ध के बाद चरला में सर्जन का पुत्र मोहिल गद्दी पर बैठा था। छापर में मोहिल वंश की पाँच देवलियाँ प्राप्त हुयी हैं जिसमें सोहनपाल (साहणपाल) की भी एक देवली प्राप्त हुयी है जिसका लेख स्पष्ट है, इस पर वि.सं. 1311 लिखा है। मोहिल से लेकर सोहनपाल तक आठ शासक हुये हैं। प्रत्येक शासक के समय का औसत 30 वर्ष माना जावे तो यह इस लेख (सोहनपाल) से 240 वर्ष पूर्व की घटना है। ज्ञात रहे मोहिल बाल्यावस्था में ही राणा बना था एवं मोहिल के बेटे हरदत का जीणमाता मंदिर में लगा स्तम्भ लेख इस बात का प्रमाण है कि इन दोनों शासकों ने अनुमानित औसत 30 वर्ष से डेढ गुणा समय तक राज्य किया था। यदि इस औसत को घटा दिया जाये तो महमूद से हुये युद्ध एवं मोहिलों के इतिहास की समस्त तिथियाँ प्रभावित होती हैं। यदि युद्ध मैदान के अस्पष्ट लेख को वि.सं. 1031 मान लें तो औसत समय बढकर 35 वर्ष हो जाता है जो युक्ति-संगत नहीं है। अत: घांघू में चौहानों के प्रवेश का समय सर्जन के पुत्र मोहिल का सत्तारूढ होना, मोहिल के पुत्र हरदत का जीणमाता मंदिर के स्तम्भ पर उकेरित लेख, सोहनपाल की देवली से शासकों के समय की गणना तथा उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि गोगा के अर्जन-सर्जन से निर्णायक युद्ध की घटना वि.सं. 1071 (ई.सं. 1014) के लगभग की है। ददरेवा के पास (खुड़ी) युद्ध मैदान की देवळी के लेख को विशेषज्ञों से पढवाने की आवश्यकता है।

राज्य विस्तार एवं गुरु गोरखनाथ के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार :- अर्जन-सर्जन से हुये निर्णायक युद्ध के बाद गोगा की शक्ति एवं सम्मान में वृद्धि हुयी। सम्भवत: उत्तर-पूर्व के कुछ छोटे राज्यों ने आधीनता स्वीकार कर ली एवं उत्तर-पश्चिम के लगभग निर्जन भू-भाग पर अपना अधिकार कायम कर लिया तथा नये गाँव बसाने का प्रयास किया। ननिहाल एवं ससुराल (सुरियल का मायका) क्षेत्र के (पूर्वी दिशा) के राजाओं से मैत्री सम्बन्ध प्रगाढ किये। लोककथाओं आदि में भी किसी बड़े राज्य से संघर्ष का विवरण नहीं मिलता है।

इतिहासकारों द्वारा लिखित शोधपूर्ण साहित्य एवं लोककथाओं द्वारा यह प्रमाणित होता है कि गोगा चौहान के समय गुरु गोरखनाथ का सांसारिक जीवन विद्यमान था। चमत्कारी संत होने के साथ ही भारतीय स्वाभिमान एवं संस्कृति के मुखर समर्थक थे। भजनों (वाणी) के द्वारा निजस्वरूप को पहचानने, रूढिगत अंधविश्वास को छोड़ने एवं आत्मबल सृजित करने का संदेश देना इनका मुख्य उद्देश्य था। आध्यात्मिक यात्राओं द्वारा राजा-महाराजाओं एवं राजकुमारों का आतिथ्य स्वीकार करते थे। उज्जैन, कामरूप बंगाल एवं नेपाल के राजपरिवार इनकी विचार-धारा के अंधभक्त थे। यवनों के आक्रमणकारी मनसूबों के विरुद्ध भारतीय जनमानस के मनोबल में वृद्धि कर समर्थ होने का संदेश दिया। ग्यान-माला, आत्मबोध, गोरख वचन, अष्टमुद्रा, खाणीवाणी एवं चौबीस सिद्ध आदि अनेक ग्रंथों का लेखन कर भारत की महान परम्पराओं का गौरव बढाया।

डॉ. प्रबोधचंद्र वागची द्वारा सन् 1934ई. में संपादित मत्स्येंद्रनाथ द्वारा लिखित 'कौल ज्ञान निर्णय' का लिपिकाल सिद्ध करता है कि मत्स्येंद्रनाथ (मछेन्द्रनाथ) ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्ववर्ती संत हैं। लिखित साहित्य गोरखनाथ के सांसारिक आविर्भाव को निर्धारित करता है। यदि हम विक्रम की 11वीं शताब्दी में प्रचारित-प्रसारित विचारधारा

को मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का प्रथम सोपान कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। सिद्ध संत गोरखनाथ की विचारधारा का ददरेवा चौहान राजपरिवार प्रबल समर्थक रहा। माँ बाछल एवं युवक गोगा ने संपूर्ण राज्य में देवालयों के रख रखाव पर धन खर्च कर संरक्षण प्रदान किया तथा प्रत्येक गाँव में गोचर भूमि के क्षेत्र में वृद्धि की जिसे बाद के शासकों (राठौड़ शासन सहित) ने पुन: कृषि भूमि नहीं बनाया। गायों के लिये पानी की आवश्यकता की पूर्ति हेतु तालाबों (ढाब, जोहड़) एवं कुओं का निर्माण करवाया। ददरेवा की ढाब इस क्षेत्र में पानी का स्थाई स्रोत रहा है। मरुप्रदेश के अन्य राज्यों का गौधन भी यहाँ सुलभ चारागाह (धामण घास के मैदान) तथा पर्याप्त पानी की उपलब्धता के कारण आता रहा है इसलिये भी गोगा को गौरक्षक कहा गया है। ददरेवा की उत्तरी-पूर्वी सीमाओं के राज्यों के अतिरिक्त गोगा ने सुदूर पूर्वी क्षेत्र वर्तमान सहारनपुर आदि राज्यों में सिद्धसंत गोरखनाथ की विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया एवं इन राज्यों से सुदृढ मैत्री सम्बन्ध कायम किये, परिणामस्वरूप उत्तर-पूर्व के विस्तृत क्षेत्र में ददरेवा के इस यशस्वी राणा के प्रति सम्मानित भाव था। **(क्रमश:)**

साथी कुछ

– ईश्वरसिंह ढीमा

साथी कुछ करना होगा
साथी कुछ करना होगा
हाथ बाँध कर बैठे रहना
पाँव जोड़कर पैठे रहना
भाग्य भरोसे ऐंठे रहना
और अभावों को ही सहना
नहीं मनुज का धर्म
नव युग के नव काल जगत को
अपने चित में भरना होगा
साथी कुछ करना होगा।
उदर पूर्ति के लिए कर्म हो
तुच्छ कर्म का है उद्देश्य
मातृभूमि का नव निर्माण
श्रेष्ठ कर्म का यही लक्ष
लक्ष पूर्ति के लिए
साहस के संग चलना होगा

साथी कुछ तो करना होगा
कदम तुम्हारे जब डगमग हो
विश्वास टूटता बह जाए
अज्ञात शत्रु राहु-केतु बन
असफल असफल कह जाए।
धरती में पांवों को अंगद
पावस बनकर अड़ना होगा।
साथी कुछ तो करना होगा।
सूरज के अनथक प्रयास को
अर्जुन सम नयनों में भर दो,
मछली के दृग तारक को
सर के शीर्ष पर तुम धर दो।
यश के केतु को स्वयंभू
नील गगन में चढना होगा।
साथी कुछ तो करना होगा।
साथी कुछ तो करना होगा।

अपनी बात

हीरक जयन्ती :

श्री क्षत्रिय युवक संघ की साधना-यात्रा 22 दिसम्बर, 2021 को 75 वर्ष पूरे कर रही है। 22 दिसम्बर, 2020 से संघ का हीरक जयन्ती वर्ष प्रारम्भ हो गया था। संघ की स्वर्ण जयन्ती सन् 1996 में बड़े धूमधाम से सामाजिक भाव को प्रसारित करते हुए मनाई गई थी। उसके बाद संघ कार्य निरंतर विकास की धारा पकड़े बह रहा है। इसलिए स्वयंसेवकों में यह स्वाभाविक उमंग हिलोरें मार रही थी कि इस बार हीरक जयन्ती और भी अधिक उत्साह से, पूरी तैयारी से मनाएँगे। परन्तु पूरे विश्व में हा हाकार मचा देने वाली कोरोना महामारी ने हमारे देश को भी बन्धनों में जकड़ लिया। कोरोना का प्रसारण रोकने वाले निर्देशों ने स्वयंसेवकों के उत्साह को कर्मरूप में प्रकट होने में रुकावटें पैदा कर दी। लगभग डेढ वर्ष की अवधि में न शिविर हो सकते थे, न गाँव-गाँव जाकर सम्पर्क हो सकता था, न बड़े कार्यक्रम हो सकते थे। जहाँ उमड़ते उत्साह ने गाँव-गाँव जाकर संघ की बात बताने की योजनाएँ घड़ रखी थी, वहाँ महामारी के खतरे से निपटने के निर्देशों ने रोक लगा दी। परन्तु उमड़ते भावों को पूर्ण रूप से दबा डालना संभव नहीं होता। इसलिए इन परिस्थितियों में भी जो कुछ किया जा सकता है वह करेंगे, इस भाव ने स्वरूप लिया ।

व्यक्तिगत रूप से घर में रहते या निर्देशों का पालन करते हुए जो स्वयं की साधना द्वारा हीरक जयन्ती हेतु किया जा सकता है, उसका निर्देश दिया गया और उन बिन्दुओं पर स्वयंसेवक चलने लगे। वर्चुअल माध्यम से घर बैठे सुदूर स्थानों पर भी सम्पर्क किया जा सकता है, अत: वर्चुअल कार्यक्रम प्रारम्भ हुए। वर्चुअल माध्यम से महापुरुषों की जयन्तियाँ मनाना प्रारम्भ किया, जिसमें बड़ी संख्या में समाज बन्धु जुड़ने लगे। इसी माध्यम को अपनाकर शाखाएँ भी प्रारम्भ हुई। संभागीय स्तर पर अथवा प्रांतीय स्तर पर सुविधानुसार शाखाएँ प्रारम्भ करने को कहा गया और शाखाएँ प्रारम्भ हो गई। सभी एक स्थान से जुड़ें और संघ साहित्य पर, सहगीतों पर सार्थक प्रकटीकरण का लाभ उठाएँ, यह भी वर्चुअल माध्यम से प्रारम्भ हुआ। जिस क्षेत्र में महामारी का प्रसार नहीं है वहाँ छोटी-छोटी सम्पर्क यात्राएँ भी होने लगी। जहाँ पूर्व में श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविर हो चुके हैं, वहाँ व्यक्ति व समाज निर्माण का यज्ञ सम्पन्न हो चुका है अत: वे स्थान तो हमारे लिए तीर्थ स्थान हैं। अपने आसपास ऐसे स्थान हों तथा वहाँ महामारी का असर न हो, वहाँ तीर्थ दर्शन के कार्यक्रम भी सरकारी निर्देशों का पालन करते हुए सम्पन्न हुए। गत लगभग तीन माह से कोरोना लगभग समाप्ति की ओर है तथा सुरक्षित स्थानों पर मैदानी शाखाएँ भी प्रारम्भ हुई हैं तथा शिविर भी सम्पन्न हुए हैं। कुछ महापुरुषों की जयन्तियाँ, निर्वाण दिवस, स्मृति दिवस आदि भी मैदानी स्तर पर मनाए गये हैं।

अब, जब आयोजनों पर संख्या की छूट मिल गई है तो दबे हुए भावों में ज्वार आ गया और चारों तरफ से संघ के स्वयंसेवकों का आग्रह आना प्रारम्भ हो गया कि अब 22 दिसम्बर को जयपुर में बहुत बड़ा आयोजन किया जाए। उत्साहित भावनाओं को कर्म में रूपान्तरित करना है अत: 22 दिसम्बर को जयपुर में भवानी निकेतन प्रांगण में जयन्ती का कार्यक्रम करना निश्चित किया है। सभी समाज बन्धु सादर आमंत्रित हैं। सामाजिक भाव को दृढतर करने के इस अवसर का लाभ उठाएँ। परिवार, रिश्तेदारों तथा जान-पहचान वालों के साथ निर्देशों की पालना करते हुए इस सामाजिक यज्ञ में अपनी आहुति प्रदान करें। एक दूसरी विपत्ति यह भी आ सकती है कि यदि कोरोना बढना प्रारम्भ हो जाए तो दी गई छूट समाप्त कर पुन: संख्या पर रोक लगा दी जाए। ऐसी स्थिति में जो निर्णय होगा वह अन्य साधनों से पहुँचाने का प्रयास होगा। ❑

संघ के स्वयंसेवक बन्धु प्रेम सिंह जिंजनीयाली को जलदाय विभाग में LDC बनने पर हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

-: शुभेच्छु :-

गणपत सिंह अवाय, भवानी सिंह मुंगेरिया,
तारेंद्र सिंह जिंजनीयाली, पदम सिंह रामगढ,
शैतान सिंह जिंजनीयाली, शम्भु सिंह जिंजनीयाली,
नरपत सिंह राजगढ़, स्वरूप सिंह नेडान,
सुरेन्द्र सिंह म्याजलार, प्रेम सिंह बईया

शिक्षा विभाग में उतकृष्ट कार्यो के लिए श्री मोहनसिंहजी रनियादेशीपुरा (व्याख्याता) को राज्य स्तरीय शिक्षक सम्मान से सम्मानित होने व श्री अशोकसिंह

मोहनसिंहजी रनियादेशीपुरा
(व्याख्याता)

पुत्र श्री कानसिंह जी मलवा का कृषि अधिकारी चयन परीक्षा में राजस्थान में प्रथम स्थान पर चयन होने पर हार्दिक बधाई व उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

अशोक सिंह मलवा
पुत्र कान सिंह मलवा

-: शुभेच्छु :-

हरिसिंह रेवाड़ा जेतमाल, पदम सिंह भाऊडा, घनश्यामसिंह शेखावत, कुन्दनसिंह तिलवाड़ा, हनुवन्तसिंह ढाणी सांखला, बालुसिह पंवार खेडा, सवाईसिह साथुनी, जेतमालसिंह बिशाला, श्यामसिंह बायतु, गजेन्द्र सिंह सोमेसरा, भीमकरण बागावास, दौलतसिंह मुंगेरिया, श्रवणसिंह साजियाली, नरपत सिंह चिड़िया, मेघसिंह चिड़िया, अर्जुनसिंह गुडानाल, खीमसिंह भाटी लापुंदरा, शम्भूसिंह विशनसिंह मेवानगर, गोविंदसिंह पायला ,मांगूसिंह वरिया, मूलसिह जानकी, मेहताबसिंह सरपंच ढाणी सांखला, मोन्टुसिंह करणोत रावली ढाणी, हरिसिंह वेदरलाई, लालसिंह नेवाई, मनोहरसिंह गूगडी, नाथुसिंह राठौड़ रनियादेशीपुरा, खेतपालसिंह भाटी खट्टू, मेहरसिंह राठौड़ चान्देसरा

दिसम्बर सन् 2021
वर्ष : 58, अंक : 12

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह